# MAA OMWATI DEGREE COLLEGE

# HASSANPUR

# NOTES

# CLASS:- M.A. (HINDI) 1st SEM

## SUBJECT: ADHUNIK HINDI KAVITA -I (MC)

# आधुनिक हिन्दी कविता

एम.ए. ( प्रथम सेमेस्टर ) : प्रश्न पत्र-1

(Hard Core Paper)

Scanned with ACE Scanner

☐ राम काव्य परम्परा में साकेत का स्थान निश्चित कीजिए।

*अथवा*

**"यदि राम काव्य में रामचरित मानस अद्वितीय रचना है तो साकेत द्वितीय रचना है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर**–राम कथा अत्यन्त प्राचीन है। भारत में दो हजार वर्ष पूर्व से राम विषयक काव्य-रचना होती रही है। सर्वप्रथम रामकाव्य के रूप में **'वाल्मीकि रामायण'** प्रतिष्ठित है। इसके अन्तर्गत राम को मानव के रूप में अंकित किया गया है। बाद में बौद्धों के प्रभाव में अवतारवाद का जन्म हुआ, जिसके फलस्वरूप राम को विष्णु का अवतार मान लिया गया। उनमें भी ईश्वरत्व का आरोप हो गया। **'विष्णु पुराण'** में राम को अवतार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। **'अध्यात्म रामायण'** ईश्वरावतार माना गया है।

रामकाव्य के अन्तर्गत भक्ति का प्रवर्त्तन **आचार्य रामानुज** की परम्परा में **राघवानंद** द्वारा प्रारम्भ हुआ और उनके शिष्य **रामानंद** ने चौदहवीं शताब्दी में रामभक्ति सम्प्रदाय को जन्म दिया। इन्हीं के शिष्य **तुलसीदास** द्वारा सर्वाधिक प्रतिष्ठित रामकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना की गई।

**तुलसी से पूर्व हिन्दी में रामकाव्य परम्परा**–रामकथा के कुछ अंश सर्वप्रथम आदिकालीन ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में दशावतार-वर्णन के अन्तर्गत 38 छन्दों में आए हैं। इसके उपरान्त भक्तिकालीन कवियों ने राम की पावन कथा को काव्यबद्ध किया है। इस काल का परिवेश भी राम के लोकरक्षक स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए सर्वाधिक अनुकूल था। आचार्य रामानंद ने राम भक्ति भावना का व्यापक प्रचार किया, जिससे कवियों को इस दिशा में काव्य रचना करने की प्रेरणा भी मिली। उनके पश्चात् **विष्णुराम** ने इस दिशा में प्रयास किया। उन्होंने **'वाल्मीकि रामायण'** को हिन्दी में प्रस्तुत किया। इसी परम्परा में **ईश्वरदास** कृत **'भरतमिलाप'** तथा **'अंगद-पैज'** कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। पहली रचना में भरत का भ्रातृ प्रेम दर्शाया गया है। राम के वनवास के समय भरत ननिहाल में थे। वहाँ से अयोध्या लौटने पर जब उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया गया तो वे राम के लिए विलाप करने लगे। सारी प्रजा भी उनके साथ व्याकुल हो उठी। वे राम को मनाने चित्रकूट गए। इसी प्रसंग को 'भरत मिलाप' काव्य का आधार बनाया गया। इसे डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने **रामचरित सम्बन्धित हिन्दी का प्रथम प्रबन्ध काव्य स्वीकार किया है।** राम कथा के एक अन्य प्रसंग–अंगद के द्वारा रावण की सभा में शौर्य प्रदर्शन को 'अंगद पैज' काव्य का आधार बनाया गया है। कवि ने राम नाम के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है–

**राम नाम भाव दिन राती, अहर मेखहु निरमल मोती।**
**राम नाम ईसर कवि गाये, सुनहु लोग तुम चितु लाये।।**

**तुलसीदास और 'रामचरितमानस'**–तुलसीदास उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ विलक्षण रामभक्त थे। उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'रामचरितमानस' रामकाव्य परम्परा का देदीप्यमान रत्न है। यों तो तुलसी के 'रामलला नहछू', 'बरवै रामायण', 'जानकी मंगल' तथा 'कवितावली' आदि काव्य रामकथा से ही सम्बद्ध हैं, लेकिन 'रामचरितमानस' में रामचरित का विशद्, व्यापक व अपूर्व अंकन हुआ है। कवि ने इसे मानस रूपी सरोवर

Scanned with ACE Scanner

[illegible] वक के [illegible] प्रस्तुत [illegible] है। सा[illegible] चार वक्ताओं [illegible] म से सात खण्डों में वर्णित की गई है। ये चार वक्ता ही इसके चार घाट हैं तथा सात कांड इसके सात सोपान हैं।

'रामचरितमानस' के उपजीव्य ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, हनुमान्नाटक, श्रीमद्भागवत, उत्तर रामचरित इत्यादि ग्रन्थ हैं। 'मानस' में तुलसी ने राम को शील, शक्ति व सौन्दर्य का समन्वित रूप प्रदान किया है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "तुलसी ने राम के विराट् स्वरूप को दर्शन द्वारा ग्रहण कर जीवन के व्यापक क्षेत्र में अवतरित किया है। उन्होंने राम में अनन्तशील, अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति का समावेश कर उनका ईश्वर (सम्पूर्ण ऐश्वर्यवान) रूप पूर्ण कर दिया और उधर राम के जीवन में आर्य जीवन को समाहित करते हुए राम का भारतीय जीवन से अक्षुण्ण संबंध स्थापित कर दिया है।"

वे साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर भी हैं। वे इस विश्व के प्रत्येक जड़-चेतन में व्याप्त हैं–

**जड़-चेतन जग जीव जत,**
**सकल राममय जानि।**

वे भक्तों व सज्जनों के लिए कृपालु व सहायक हैं, लेकिन दुष्टों के लिए संहारक हैं। तुलसी ने उनके लोकरक्षक रूप को भव्यता से प्रस्तुत किया है। वे अधर्म व राक्षसों को मिटाने के लिए अवतरित हुए हैं–

**जब-जब होइ धर्म की हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।**
**तब-तब धरि प्रभु मनुज शरीर। हरहिं सकल सज्जन भव पीरा।।**

तुलसी ने मानस में आदर्श जीवन की प्रस्तुति की है। राम एक आदर्श पुत्र, भरत एक आदर्श भाई, सीता एक आदर्श पत्नी, कौशल्या एक आदर्श माता, सुग्रीव एक आदर्श मित्र तथा हनुमान एक आदर्श सेवक के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

कवि ने मानस में समन्वय की विराट् चेष्टा की है। निर्गुण व सगुण का समन्वय, ज्ञान व भक्ति का समन्वय, शास्त्र व लोक का समन्वय, संस्कृत व भाषा का समन्वय, अभिव्यंजना की विविध शैलियों का समन्वय। कवि ने समन्वय की इस साधना के द्वारा समस्त् हिन्दू समाज को आकर्षित कर रामनाम का संबल प्रदान किया। संक्षेप में 'रामचरित मानस' में ज्ञान, भक्ति व काव्य की त्रिवेणीं प्रवाहित हुई है।

**तुलसी के परवर्ती रामकाव्य**–तुलसी के परवर्ती काल में कई रामचरितात्मक काव्यों की रचना हुई, जिनमें से प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

**रामचन्द्रिका**–हिन्दी राम काव्य परम्परा के अन्तर्गत यह एक विशिष्ट कृति है। यह प्रबन्धकाव्य 39 प्रकाशों में विभक्त है। इसमें उस भक्ति भावना का अभाव है, जिसके लिए रामचरितमानस सुविख्यात है। मार्मिक प्रसंगों की पहचान में भी केशव सक्षम नहीं है। वास्तव में केशव राज्याश्रित शृंगारी कवि थे, अतः यह विषय उनकी रुचि के अनुकूल भी न था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, **"सारांश यह है कि प्रबंध काव्य-रचना के योग्य न तो केशव में अनुभूति ही थी, न शक्ति। परम्परा से चले आते हुए कुछ नियत विषयों के (जैसे युद्ध, सेना की तैयारी, उपवन, राजदरबार के ठाट-बाट तथा शृंगार और वीर रस) फुटकल वर्णन ही अलंकारों की भरमार के साथ वे करना जानते थे।"** केशव ने भाव की अपेक्षा कलात्मकता व अलंकृति को अधिक महत्त्व दिया है। संभवतया इसीलिए **डॉ० नगेन्द्र** ने इसे न भक्ति-काव्य माना है, न जीवन काव्य, बल्कि यह एक अलंकृत काव्य है।

**रामायण महानाटक**–इसके रचयिता प्राणनाथ चौहान हैं। यह एक संवादात्मक प्रबंधकाव्य है। यह दोहा-चौपाई शैली में रचित है। इसमें वर्णनात्मकता पर अधिक बल दिया गया है। इसमें कई स्थलों पर संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' का प्रभाव लक्षित होता है। इसकी शैली की एक बानगी प्रस्तुत है–

**श्रवन बिना सो अस बहुगुना। मन में होइ सु पहले सुना।**
**देखै सब पै आहिं न आँखीं। अंधकार चोरी के साखी।।**

**हनुमन्नाटक**–इसके रचयिता हृदयराम पंजाब के निवासी थे। इस पर संस्कृत 'हनुमन्नाटक' का प्रचुर प्रभाव दिखाई देता है। यह ग्रन्थ 1500 छन्दों में व्याप्त है। इसमें रामकथा को जानकी स्वयंवर से लेकर राम के राज्याभिषेक तक प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ के विषय में उल्लेख्य है कि गुरु गोबिन्द सिंह (जो स्वयं एक कवि भी थे) इसका बड़ा सम्मान करते थे और श्रद्धा से सदैव अपने साथ रखते थे।

Scanned with ACE Scanner

**रामरासो**—इसके रचयिता माधवदास चारण कवि थे। इसके अन्तर्गत कवि राम कथा के पूर्ण विस्तार में नहीं गया, अपितु प्रमुख प्रसंगों व चरित्रों की विशिष्टताओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इन्होंने संस्कृत के ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण' के आधार पर हिन्दी में भी 'अध्यात्म रामायण' प्रस्तुत की।

**पौरुषेय रामायण**—इसके रचयिता नरहरि बारहट हैं। यह एक वृहदाकार ग्रन्थ है। यह वास्तव में 'चतुर्विंशति अवतार चरित्र' नामक विशाल ग्रन्थ का एक अंश है। इसमें इक्कीसवें अवतार राम के चरित्र का वर्णन है। यह मुख्य रूप से 'वाल्मीकि रामायण' पर आधारित है। इसकी भाषा राजस्थानी व ब्रजमिश्रित अवधी है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने इसे राम-काव्य-परम्परा की एक प्रौढ़ कृति माना है।

**गोविन्द रामायण**—यह रामायण सिक्खों के दशम गुरु गोविन्द सिंह द्वारा रची गई। उनका व्यक्तित्व बड़ा विलक्षण था। वे करवाल व कलम दोनों के धनी थे। इस राम काव्य में राम की कथा का तेजस्वी वर्णन विस्तार से किया गया है। इसमें सरस ब्रजभाषा व सवैया छन्द प्रयुक्त हैं। इन राम काव्यों के अतिरिक्त **नवलसिंह** कृत **'रामचन्द्र विलास'**, **'आल्हा रामायण'**, **'रूपक रामायण'**, रीवां के काव्य-प्रेमी तथा रामभक्त नरेश-**महाराज विश्वनाथ सिंह** प्रणीत **'आनन्द रामायण'**, **सरजूराम पण्डित** कृत **'जैमिनी पुराण भाषा'** (रामचरित मानस की शैली पर रचित); मधुसूदन दास कृत **'रामाश्वमेध'** भी उल्लेखनीय हैं।

**रसिक सम्प्रदाय के कवियों के राम काव्य**—तुलसी के बाद कई रामभक्त कवियों ने कृष्ण काव्य की लोकप्रियता से प्रभावित होकर जो रामकाव्य रचे, उनमें राम को मर्यादा पुरुषोत्तम न दिखाकर कृष्ण के समान ही रसिक व छैल-छबीला दर्शाया गया। राम और सीता की प्रणय लीलाओं का सरस वर्णन भी इन कवियों ने प्रारम्भ कर दिया। इनमें **लालदास** कृत **'अवध विलास'**, **जानकी रसिक शरण** कृत **'अवधसागर'**, **जनक राजकिशोरी शरण** कृत **'जानकी करुणाभरण'**, **'सीताराम रसतरंगिणी'**, **जानकीशरण** कृत **'सियाराम रसमंजरी'**, **अग्रदास** कृत **'अष्टयाम'** इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई कवि स्वयं को सीता जी की सखी मान कर सियाराम की प्रेम लीलाओं का वर्णन करते थे। उदाहरणार्थ रसिकअली द्वारा रचित एक घनाक्षरी छन्द प्रस्तुत है, जिसमें किया गया राम व सीता का रूप वर्णन राधा कृष्ण के वर्णन के समान शृंगारी प्रवृत्ति का सूचक है—

**सोहै सीस प्यारी जू के चन्द्रिका जटित नग,**
**जगमग जोति भानु कोटि उजियारी है।**
**रतन किरीट राजै राघव सुजान सीस,**
**उदित विदित कोटि तरुन तमारी है।**
**दामिनी सघन घन बरन बिराजै दोऊ,**
**नील पीत बसननि जटित किनारी है।**
**रसिकअली जू प्यारे राजत सिंगार कुंज,**
**सुषमा अमित पुंज छवि मोदकारी है।।**

उक्त रामकाव्य लोकमानस को भाया नहीं। उनके हृदय में तुलसीदास द्वारा अंकित राम की छवि ही भास्वर बनी रही।

**आधुनिक काल के अन्तर्गत रामकाव्य**—आधुनिक काल में रचित प्रसिद्ध रामकाव्य हैं—**'रामचरित-चिंतामणि'**, **'साकेत'**, **'राम चन्द्रोदय'**, **'कौशल-किशोर'**, **'साकेत-संत'**, **'कैकेयी'**, **'वैदेही वनदास'** आदि। पं. रामचरित उपाध्याय के द्वारा रचित 'रामचरित चिंतामणि' 25 सर्गों में विभक्त महाकाव्य है। इसमें वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस को आधार-ग्रन्थों के रूप में अपनाया गया है। इसमें राम के चरित्र का विकास प्रभावशाली नहीं हो पाया। इसमें महाकाव्यों के स्थूल लक्षणों का अनुपालन तो किया गया है, लेकिन फिर भी मार्मिक स्थलों के अभाव में इसमें साहित्यिक उत्कर्ष नहीं आ पाया। कुछ पंक्तियों के अवलोकन से ही इसके स्तर का परिचय मिल जाता है—

**लक्ष्मण तुम्हें मेरी शपथ है बात खुल जावे नहीं,**
**जिस भाँति हो कल, गेह से सीता निकल जावे कहीं।**
**दर्शन तपोवन का उसे भी इष्ट है, इस ब्याज से,**
**उसको निकालो गेह से, मुझको बचाओ लाज से।।**

Scanned with ACE Scanner

डॉ० नगेन्द्र ने आधुनिक युग में प्रणीत रामकाव्यों का आकलन करते हुए लिखा है—"इस युग में आकर 'रामचरित चिन्तामणि', 'रामचरित चन्द्रोदय' एवं 'कौशल-किशोर' तीन महाकाव्यों की सृष्टि हुई। तीनों में महाकाव्य के लक्षण विद्यमान होने पर भी काव्य की परिक्षीणता है। पहले में नैतिक दृष्टिकोण से रामचरित का वर्णन है, परन्तु मानव मनोविज्ञान का आधार न होने से इस ग्रन्थ का विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं रह गया। 'रामचरित चन्द्रोदय', 'रामचन्द्रिका' का आधुनिक स्वरूप है। 'कौशल किशोर' में कवि ने भले ही 'रामायण' का आधुनिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया है, परन्तु उसमें जीवन को समग्र रूप में ग्रहण करने का प्रयत्न नहीं है। उसमें रामचरित के उस स्वरूप का तो स्पर्श भी नहीं है, जिसके कारण वे राम हैं। अतः रामकाव्य के केवल दो ही स्तम्भ हैं—**मानस** और **साकेत**!"

**साकेत**—आधुनिक काल में रचित रामकाव्यों में गुप्त जी द्वारा प्रणीत 'साकेत' सर्वोत्तम है। इस महाकाव्य की विशिष्टता यह है कि इसमें रामकथा को अवध में घटित होते अथवा अलौकिक शक्ति के द्वारा वहाँ से दर्शाया गया है। गुप्त जी ऊर्मिला विषयक प्राचीन कवियों की उदासीनता से व्यथित थे। परिणामतः उन्होंने ऊर्मिला के उपेक्षित चरित्र को उजागर करने हेतु 'साकेत' की रचना की, लेकिन स्वयं राम भक्त होने के कारण इस काव्य को राम काव्य से भिन्न स्वरूप न दे पाए।

'साकेत' के अन्तर्गत राम के नर व नारायण दोनों रूपों के दर्शन हो जाते हैं। वे आर्यों को उनका आदर्श बताने तथा आर्य संस्कृति के उद्धार के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं। वे विवश, विकल, दीन-हीन तथा राक्षसों द्वारा प्रताड़ितों को भयमुक्त करके उनकी सहायता करने आए हैं। वे मर्यादा को बचाने तथा जगदुपवन के झंखाड़ छाँटने हेतु आए हैं—

**मैं राज्य भोगने नहीं, भुगाने आया,**
**हंसों को मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया।**
**भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,**
**नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।**
**संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया**
**इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।**

यह महाकाव्य बारह सर्गों में विभक्त है। इनमें से नवम सर्ग विशेष रूप से ऊर्मिला को समर्पित है। इसमें उसकी विरह-व्यथा का विशद् व व्यापक अंकन किया गया है। इसमें कैकेयी के चरित्र को भी ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है। उसे ग्लानि बोध से पीड़ित दर्शाया गया है। वह अपनी गलती को स्वीकार करते हुए उसके लिए भारी से भारी दंड सहने को तैयार है। वह अपने पुत्र भरत की दृष्टि में भी गिर चुकी है। उसे पश्चात्ताप की अग्नि में जलती देखकर स्वयं राम उसके मनोबल को बढ़ाते हुए कहते हैं—

**"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,**
**जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।"**
**पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई—**
**"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।"**

आधुनिक युग में लिखे जाने के कारण 'साकेत' में आधुनिक विज्ञान सम्मत दृष्टिकोण अपनाया गया है। आज का बौद्धिक मानव हर घटना को तर्क की कसौटी पर परखता है। अतः गुप्त जी ने ऐसी घटनाओं का या तो परिहार किया है, जो नितान्त अविश्वसनीय अथवा अलौकिक प्रतीत होतीं या उन्हें बुद्धि सम्मत बनाने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ, हनुमान के द्वारा संजीवनी प्राप्त करने के लिए पहाड़ को ही हाथ पर उठाकर ले आना। गुप्त जी ने यह बूटी भरत के द्वारा हनुमान को दिलवाई है। भरत को यह बूटी कोई साधु दे गए थे।

'साकेत' का अभिव्यंजना पक्ष भी समृद्ध बन पड़ा है। कवि ने प्रत्येक सर्ग में भिन्न छन्द का प्रयोग किया है। नवम सर्ग में तो विरहिणी की मनोदशा के अनुरूप छन्द बदलते हैं। सभी छन्दों का कुशल प्रयोग गुप्त जी की काव्य कला की विशिष्टता है। अष्टम व नवम सर्गों में सुन्दर व सरस गीतों की सृष्टि ने भावाभिव्यंजना को आकर्षक बनाया है।

Scanned with ACE Scanner

उदाहरणार्थ यह गीतांश प्रस्तुत है—

**बचकर हाय पतंग मरे क्या?**
**प्रणय छोड़ कर प्राण धरे क्या?**
**जले नहीं तो मरा करे क्या?**
**क्या यह असफलता है?**
**दोनों ओर प्रेम पलता है।**

संक्षेप में 'साकेत' भाव एवं भाषा दोनों दृष्टियों से उत्तम बन पड़ा है।

**'साकेत' का स्थान**—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'साकेत' से पूर्व हिन्दी में रामकाव्य तो प्रचुर मात्रा में रचे गए, लेकिन उनमें एक ही महाकाव्य सर्वगुण सम्पन्न है और वह है तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस'। अनेक विद्वानों का भी यही मत है। इस सन्दर्भ में डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं कि **'तुलसीदास का काव्य ही एक प्रकार से हिन्दी में रामकाव्य का इतिहास है।'** अतः रामकाव्य के अन्तर्गत साकेत का स्थान निर्धारित करने के लिए उसकी मात्र 'रामचरितमानस' से ही तुलना पर्याप्त है।

'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य का सर्वाधिक प्रतिष्ठित महाकाव्य है। यह भारतीय जनमानस में श्रद्धापूर्वक उपस्थित है। 'साकेत' एक श्रेष्ठ रामकाव्य होते हुए भी जनसामान्य में वह स्थान नहीं बना सका। जहाँ तक महाकाव्यत्व का प्रश्न है, बाह्य लक्षणों की दृष्टि से 'साकेत' 'मानस' से आगे निकल जाता है, यथा मानस में महाकाव्य के लिए निर्धारित 8 सर्गों से एक काण्ड कम है। उसमें सर्गानुसार छन्द भी परिवर्तित नहीं होते। समूचा काव्य दोहा-चौपाई शैली में रचित है जबकि 'साकेत' में बारह सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में भिन्न छन्द प्रयुक्त है। लेकिन 'साकेत' की यह श्रेष्ठता केवल बाह्य लक्षणों तक सीमित है, आन्तरिक लक्षणों की दृष्टि से मानस कहीं बेहतर सिद्ध होता है। उसमें मार्मिक स्थलों का अत्यन्त भावपूर्ण व विशद वर्णन हुआ है। 'साकेत' का यह पक्ष उतना उत्तम नहीं बन पाया।

कथा संयोजना की दृष्टि से 'साकेत' 'मानस' से बहुत पीछे रह जाता है। उसके कथानक में शैथिल्य व असंगतियाँ हैं। कहीं घटनाओं की भरमार है, कहीं जबरदस्ती उन्हें संयुक्त करने का प्रयास किया गया है। कहीं कथा विलम्बित गति से आगे बढ़ती है, तो कहीं अत्यधिक द्रुतगति से। नवम सर्ग में तो कथा ठहर ही जाती है। साकेत में बाह्य संघर्ष का भी अभाव है। 'मानस' के कथानक में रावण वध उसका लक्ष्य है, जबकि साकेत में लक्ष्मण ऊर्मिला का मिलन। यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता, जितना पाप-प्रतीक रावण का वध।

इसी प्रकार मानस में राम का चरित्र बड़ी भव्यता से प्रस्तुत किया गया है। साकेत में यह अंकन सामान्य बन पड़ा है। इसका कारण संभवतया यह भी है कि गुप्त जी ने अपने काव्य में मुख्य रूप से ऊर्मिला के चरित्र को ही उभारने का प्रयास किया है।

कुछ बिन्दु ऐसे भी हैं, जिनमें साकेत मानस से श्रेष्ठ प्रतीत होता है, यथा—मानस में ऊर्मिला, कैकेयी इत्यादि पात्र उपेक्षित रह गए हैं। मानसकार कैकेयी का वैसा मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन नहीं कर पाए, जैसा गुप्त जी ने साकेत के अन्तर्गत किया है। मानस में कैकेयी के दुष्कर्म के कारण उसे नितान्त त्याज्य व विगर्हणीय मान लिया गया है, जबकि गुप्त जी ने उसे मानवीय धरातल पर देखा-परखा है। ऊर्मिला के चरित्र के प्रति महाकवियों की उदासीनता का तो साकेत में परिहार हुआ ही है, उसके त्याग, धैर्य, करुणा तथा परदुःखकातरता को भी रेखांकित किया गया है।

गुप्त जी ने साकेत में आधुनिक बोध को अपनाया है। जो प्रसंग अथवा घटनाएँ तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते, उनको बुद्धि सम्मत बनाने का प्रयास किया है, यथा—हनुमान को संजीवनी लाते समय पर्वत उठा कर उड़ते नहीं दर्शाया; बल्कि भरत से ही वह बूटी उन्हें दिलवा दी गई है। राम व लक्ष्मण के सहायतार्थ भरत व शत्रुघ्न का सेनाएँ तैयार करना स्वाभाविक प्रतीत होता है। मानस में समुद्र सुखाने का वर्णन है, जो असंभव प्रतीत होता है, अतः साकेत में उसे स्थान नहीं दिया गया। साकेत के अन्तर्गत सीता द्वारा आमंत्रित ऊर्मिला व लक्ष्मण की क्षणिक भेंट भी रोचक बन पड़ी है। मानसकार ने इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार

Scanned with ACE Scanner

मानस में राम पिता के विषाद का कारण कैकेयी से पूछते हैं। वह निर्लज्जता से सब कुछ बता देती है जबकि साकेत में इसे अधिक स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया गया है। उसे अपने कुकृत्य का बोध है, अतः वह स्वयं कुछ नहीं बोलती। दशरथ राम का मुख कैकेयी की ओर करके उसे धिक्कारते हुए कहते हैं–

**अभागिनी, देख कोई क्या कहेगा?**
**यही चौदह बरस वन में रहेगा,**
**भरत का भी न ऐसे राज्य होगा,**
**प्रजा-कोपाग्नि का वह राज्य होगा।**

सीता का चरित्रांकन साकेत में अधिक सुन्दर बन पड़ा है। वह स्वावलम्बी दर्शाई गई है। आदिवासी बालिकाओं को चरखा इत्यादि सिखाते हुए जीवन के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टि का परिचय देते हैं। इसी प्रकार राम राजतंत्र में विश्वास करते हुए भी उसे अधिक लोकाश्रित मानते हैं। राम से राज्य ले लेने के बाद लक्ष्मण क्षोभ व्यक्त करते हैं–

**भला वे कौन जो राज्य लेवें,**
**पिता भी कौन जो राज्य देवें।**
**प्रजा के अर्थ है साम्राज्य सारा,**
**मुकुट है श्रेष्ठ ही पाता हमारा।**

राज्य के सारे नियम जन सामान्य के मंगल के लिए हैं। राम भी सीता से कहते हैं कि वे तापित व दुःखी प्राणियों के कल्याण के लिए इस भूमि पर अवतरित हुए हैं। साकेत के अन्तर्गत राम का व्यक्तित्व व कृतित्व अधिक मानवतावादी है–

**भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,**
**नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया!**
**संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,**
**इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।**

इस प्रकार देखा जा सकता है कि साकेतकार ने अपने युग के अनुरूप साकेत का सृजन किया है। संभवतया इसीलिए **डॉ० नगेन्द्र** ने मानस को **'भक्ति काव्य'** तथा साकेत को **'जीवन काव्य'** कहा है। सच्चाई यह है कि साकेत में भक्ति को चाहे इतना महत्त्व न दिया गया हो, लेकिन मानस को मात्र भक्ति काव्य नहीं कहा जा सकता। वह जीवन से पूर्णतया जुड़ा हुआ काव्य है। **डॉ० माता प्रसाद गुप्त** का मत है कि मानस में जीवन की एक विस्तृत भूमिका ली गई है। उसका लक्ष्य मानवता को अशक्ति से शक्ति, अशान्ति से शान्ति और नीचे से ऊँचे ले जाना है। इसके लिए उन्होंने में मर्यादा व भक्ति को महत्त्व दिया है। साकेतकार का भी दृष्टिकोण मानवतावादी है, लेकिन उसने भक्ति की अपेक्षा सामाजिक संरचना की समता पर बल दिया है। समष्टि के लिए व्यष्टि के बलिदान को महत्त्व दिया है।

**निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,**
**हम हो समष्टि के लिए व्यष्टि-बलिदानी।**
× × × × × ×
**आनन्द हमारे ही अधीन रहता है,**
**तब भी विषाद नरलोक व्यर्थ सहता है।**
**करके अपना कर्त्तव्य रहो संतोषी,**
**फिर सफल हो कि तुम विफल, न होंगे दोषी।**

कलापक्ष के सन्दर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने मानस में काव्योत्कर्ष की पराकाष्ठा को छुआ है। वे वास्तव में अत्यन्त समर्थ कवि हैं। गुप्त जी ने अपने काव्य कला का उत्तम निदर्शन करते हुए भी उनके स्तर तक नहीं पहुँच पाते, संभवतया कोई अन्य कवि भी न पहुँच पाता। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि 'रामचरित मानस' हिन्दी रामकाव्य परम्परा का सर्वोत्तम काव्य है। वह अद्वितीय है, जबकि 'साकेत' द्वितीय है।

Scanned with ACE Scanner

**साकेत के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**"कतिपय कमियों के बावजूद भी साकेत में महाकाव्यत्व के गुण अक्षुण्ण हैं।"—इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

*अथवा*

**"क्या साकेत महाकाव्यत्व की दृष्टि से सशक्त रचना है?**

*अथवा*

**महाकाव्य का स्वरूप बताते हुए साकेत की समीक्षा कीजिए।**

उत्तर–कविवर पंत ने लिखा है कि महाकाव्य सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का जीवन्त पर्वताकार दर्पण होता है, जिसमें अपने मुख को देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है। यह किसी भाषा की समृद्धि, महती परम्परा तथा उसकी कवित्व शक्ति का भी परिचायक होता है। गुप्त जी कृत 'साकेत' भी हिन्दी भाषा का गौरव-ग्रन्थ है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसे **'आधुनिक हिन्दी का युग-प्रवर्त्तक महाकाव्य'** कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाबू गुलाब राय तथा डॉ० कमलाकांत पाठक ने भी इसे महाकाव्य ही माना है। पाठक जी लिखते हैं—**"साकेत नवयुग का महाकाव्य है। वह महाकाव्य की नई परम्परा का प्रवर्त्तक है और नवयुग की साहित्यिक तथा सामाजिक क्रान्ति का प्रतिनिधि काव्य है। उसमें काव्यरूढ़ियों से मुक्ति पाने का स्वच्छन्दतापूर्वक सुप्रयास भी है।"** आचार्य शुक्ल तथा डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने इसे महाकाव्य न मान कर क्रमशः **'बड़ा प्रबन्ध काव्य'** तथा **'वृहत् प्रबन्धकाव्य'** का नाम दिया है।

'साकेत' महाकाव्यत्व की कसौटी पर कितना खरा उतरता है, इसे जानने से पूर्व महाकाव्य के सैद्धान्तिक रूप को जान लेना आवश्यक है। इस संदर्भ में भारतीय-काव्य शास्त्रीय परम्परा के अन्तर्गत भामह, दण्डी, विश्वनाथ आदि आचार्यों द्वारा पर्याप्त विवेचन किया गया है। महाकाव्य विषयक प्रायः सभी लक्षणों का समाहार करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने इसके निम्नलिखित लक्षण निर्धारित किए हैं—

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। इसमें कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए।
2. इसका नायक उच्चकुलोद्भव तथा धीरोदात्त होना चाहिए।
3. इसके अन्तर्गत शृंगार, शान्त तथा वीर में से एक रस की प्रमुखता होनी चाहिए।
4. इसकी कथा पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा विख्यात होती है।
5. इसकी कथा में नाट्य सन्धियों का निर्वाह किया जाता है।
6. महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण तथा वस्तुनिर्देश का विधान होता है।
7. इसमें प्रायः एक सर्ग में एक छन्द की ही योजना रहती है, जो सर्गान्त में बदल जाता है। सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा का भी निर्देश होता है।
8. इसमें कहीं-कहीं दुर्जनों की निन्दा व सज्जनों की प्रशंसा रहती है।
9. महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, आखेट, ऋतु, वन, पर्वत, संग्राम तथा यात्रा आदि का वर्णन होना चाहिए।

उपर्युक्त काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर यदि 'साकेत' को परखा जाए, तो उसमें प्रायः सभी लक्षण विद्यमान हैं। 'साकेत' एक सर्गबद्ध रचना है, जिनकी संख्या बारह है। कथावस्तु पौराणिक व विख्यात है। हाँ, उसमें नाट्य सन्धियों के निर्वाह की ओर ध्यान नहीं दिया गया, क्योंकि गुप्त जी महाकाव्य हेतु शास्त्रीय लक्षणों का अक्षरशः पालन करने में विश्वास न करते थे। 'साकेत' के नायक राम उच्चकुलोद्भव तो हैं ही, धीर, उदात्त व विनयशील भी हैं। उसके प्रारम्भ में मंगलाचरण का विधान भी है। सर्गान्त में छन्द को प्रभावशाली ढंग से बदला गया है। रसों में भी शृंगार रस की प्रधानता है। प्राकृतिक दृश्यों का अंकन व युद्ध का सजीव वर्णन भी हुआ है।

Scanned with ACE Scanner

हिन्दी में भी महाकाव्य के विषय में विचार किया गया है। बाबू गुलाबराय के अनुसार **''महाकाव्य वह विषय प्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्‌घाटन किया जाता है।''**

अंग्रेजी भाषा में भी महाकाव्य के स्वरूप के सन्दर्भ में विचार विमर्श हुआ है। 'फ्राम वर्जिल टु मिल्टन' पुस्तक के अन्तर्गत सी०एम० बावरा लिखते हैं–**''महाकाव्य वृहदाकार कथात्मक काव्य रूप है, जिसमें कुछ महत्त्वपूर्ण और गरिमायुक्त घटनाओं का वर्णन होना है और जिसमें कुछ चरित्रों के क्रियाशील और भयंकर कार्यों से भरे जीवन की कथा होती है। उनके पढ़ने से हमें एक विशेष प्रकार का आनन्द मिलता है, क्योंकि घटनाएँ और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महत्ता, गौरव और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं।''**

विदेशी समीक्षकों में वाल्टेयर, मैकनील आदि ने महाकाव्य विषयक उदार दृष्टिकोण को अपनाया है। मैकनील डिक्सन के अनुसार **''यद्यपि महाकाव्य का एक निश्चित स्वरूप होता है, पर उसे संकीर्ण लक्षणों के बन्धन में नहीं बांधा जा सकता।''** स्वयं गुप्त जी भी शास्त्रीय नियमों के अक्षरशः पालन में विश्वास नहीं करते थे। अतः उपर्युक्त विभिन्न मतों के विवेचन के आधार पर किसी कृति के महाकाव्यत्व को परखने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार अपेक्षित है–

**(क) उद्देश्य और प्रेरणा**–'साकेत' के सृजन में गुप्त जी का उद्देश्य एक ओर महाकवियों द्वारा उपेक्षिता उर्मिला के गरिमामय चरित्र को प्रस्तुत करना है तो दूसरी ओर अपने आराध्य श्री राम के महिमामय चरित्र का गुणगान करना है। कवि इन उद्देश्यों में सफल रहा है। उर्मिला-अंकन की प्रेरणा उन्हें कवीन्द्र रवीन्द्र तथा पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के उन निबन्धों को पढ़ कर मिली, जिनमें उन्होंने भारतीय काव्य में उर्मिला के प्रति की गई उपेक्षा की ओर सहृदयों का ध्यान आकृष्ट किया था। यों भी द्विवेदी जी गुप्त जी के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत थे। 'साकेत' के 'निवेदन' के अन्तर्गत कवि ने उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित करते हुए लिखा भी है–

**करते तुलसी दास भी कैसे मानस-नाद?**
**महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।**

राम भक्ति तो गुप्त जी को पारिवारिक धरोहर के रूप में ही मिली थी। डॉ० नगेन्द्र ने कवि के जीवन को समग्र रूप से देखने व समझने की लालसा में भी प्रेरणासूत्र खोजे हैं। डॉ० कमलाकान्त पाठक ने इसे गुप्त जी की जीवन निष्ठा व सांस्कृतिक मनोभावना कहा है और यही 'साकेत' की मानवतादर्शवादी काव्य प्रेरणा है।

**(ख) महत्कार्य व युग जीवन का चित्रण**–'साकेत' में सांस्कृतिक विजय तथा धर्म संस्थापन का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ है। गुप्त जी भारतीय संस्कृति के आस्थावान कवि हैं। उनके नायक राम भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में अंकित किए गए हैं। कवि के अनुसार उनका जन्म तो आर्य धर्म की संस्थापना हेतु ही हुआ है–

**मैं आर्यों का आदर्श बताने आया**

उनकी हार्दिक इच्छा है कि–

**उच्चरित होती चले वेद की वाणी,**
**गूँजे गिरिकानन सिन्धु पार कल्याणी।**

त्याग की भावना भारतीय संस्कृति में अनुस्यूत है। 'साकेत' के राम, भरत, उर्मिला आदि प्रायः सभी पात्र त्यागमय जीवन जीते हुए मानव जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं। डॉ० कमलाकान्त पाठक के अनुसार 'साकेत' का राम-रावण युद्ध सांस्कृतिक संघर्ष है, सीता-हरण आर्य संस्कृति का उच्छेदन है और राम की विजय भारत की सांस्कृतिक विजय है–

**आर्य-सभ्यता हुई प्रतिष्ठित, आर्य धर्म आश्वस्त हुआ**
× × × × × ×
**होते हैं निर्विघ्न यज्ञ अब जप, समाधि, तप, पूजा-पाठ**

Scanned with ACE Scanner

'साकेत' में युगजीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार—**'युग के विकासोन्मुख जीवन का साक्षात्कार करने और उसे वाणी का परिधान पहना कर नयनाभिराम बना देने के कारण इस युग में गुप्त जी जनसमाज के प्रथम कृती कवि कहे जाएंगे'** यह युग जीवन का अंकन पारिवारिक सीमा में होते हुए भी श्लाघ्य है। डॉ० नगेन्द्र तो इस अंकन से इतने प्रभावित हैं कि उन्होंने 'साकेत' को जीवन-काव्य की उपाधि से अलंकृत किया है।

(ग) **सुसंघटित जीवन्त कथानक**—डॉ० शम्भूनाथ सिंह के अनुसार महाकाव्य में सुसंघटित तथा जीवन्त कथानक होना चाहिए। 'साकेत' का कथानक जीवन्त तो है पर सुसंघटित नहीं। संभवतः इसी कारण आचार्य शुक्ल ने इसे महाकाव्य न मान कर 'बड़ा प्रबन्धकाव्य' कहा है। कथा को जीवन्त बनाने के लिए कवि ने इसमें नाटक व गीतिकाव्य के तत्वों का समावेश किया है। कथानक में कवि ने मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं। सर्वप्रमुख परिवर्तन तो यह है कि इस कृति में राम सीता की कथा परिपार्श्व में चली गई है, उर्मिला-लक्ष्मण की कथा को उभारा गया है।

कथा का प्रारम्भ उर्मिला-लक्ष्मण-वाग्विनोद से होता है। तदुपरान्त कैकेयी मन्थरा संवाद से ले कर भरत के चित्रकूट गमन तक सभी घटनाएँ प्रत्यक्ष शैली से निरूपित हैं। नवम् व दशम् सर्ग उर्मिला की विरहावस्था को अंकित किया गया है। नवम सर्ग में कथा प्रवाह प्रायः रुक-सा गया है। इसके ठीक विपरीत अन्तिम दो सर्गों में घटनाचक्र अत्यन्त तीव्रता से घूमता है।

कथानक का विवेचन करने पर हम पाते हैं कि पहले आठ सर्गों में कुछ ही दिनों की घटनाओं को लिया गया है, जबकि अन्तिम दो सर्गों में परम्परागत राम कथा की चौदह वर्षों की घटनाओं को समाहित किया गया है। इन्हीं त्रुटियों के कारण 'साकेत' का कथानक सुव्यवस्थित व सुसंघटित नहीं बन पाया। इस सन्दर्भ में डॉ० कमलाकान्त पाठक का आकलन उद्धरणीय है—

**" 'साकेत' का वस्तु-शिल्प-आरम्भ, मध्य और अंत संतुलित नहीं है। प्रथम आठ सर्गों में प्रबन्धात्मकता व्यवस्थित है। नवम सर्ग में वह मनोगत है अर्थात् विशृंखलित हो गई है। दशम सर्ग में वह अतीत का स्मरण मात्र है। एकादश व द्वादश सर्गों में वह प्रवेगपूर्ण है।"** इसमें घटनात्मकता के स्थान पर भावात्मकता को अधिक महत्त्व दिया गया है, परिणामतः प्रबन्धात्मकता को ठेस पहुँची है।

(घ) **उदात्त नायक**—'साकेत' में प्रमुखता की दृष्टि से नायकत्व उर्मिला को प्रदान किया जाता है, लेकिन उसमें गतिशीलता का अभाव है। कतिपय विद्वान राम को नायक मानते हैं। वे उच्चकुलोद्भव उदात्त नायक हैं। वे धीर, वीर, गम्भीर व उदार प्रकृति के हैं। उनके चरित्र में शील, मर्यादा, पराक्रम, निर्भीकता, बौधिक जागरुकता व कर्तव्यपरायणता का विलक्षण समन्वय दिखाई देता है। कैकेयी व भरत के प्रति उनकी करुणा विशेष रूप से श्लाघ्य है। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी है—

**मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,**
**जो विवश, विकल, बल-हीन, दीन, शापित हैं।**
**हो जायँ अभय वे जिन्हें कि भय भासित है,**
**जो कौणप-कुल से मूक-सदृश शासित हैं।**

वे नर की ईश्वरता के प्रतीक हैं। गुप्त जी ने राम-भक्ति के कारण उन्हें ब्रह्म का प्रतीक व ईश्वरीय अवतार भी माना है, लेकिन आधुनिक युग के अनुरूप अधिकांशतः उन्हें मानव-रूप में ही प्रस्तुत किया है।

उर्मिला का चरित्र भी उदात्त है। वह नारी के गौरव का प्रतीक है। सहनशीलता, उदारता, सेवाव्रत, कर्तव्यपरायणता व त्याग की भावना से उसका चरित्र मण्डित है—

**आज स्वार्थ है त्याग भरा,**
**है अनुराग विराग भरा।**

विरह व्यथित हो कर भी वह कर्तव्य को एक पल के लिए भी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देती। उसे किसी से गिला-शिकवा नहीं, अपितु वह प्राणीमात्र के प्रति करुणा से आपूरित है। इसी में उसके चरित्र की उदात्तता निहित है। अतएव नायकत्व की दृष्टि से 'साकेत' महाकाव्योचित है।

Scanned with ACE Scanner

(ङ) **उदात्त शैली**—महाकाव्य के सृजन में शैली का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंग्रेजी भाषा के समीक्षक एबर क्राम्बी के अनुसार महाकाव्य की शैली उदात्त, गम्भीर व सप्राण होनी चाहिए। 'साकेत' की शैली उतनी प्रौढ़ उदात्त एवं गम्भीर तो नहीं, जितनी महाकाव्य हेतु अपेक्षित है, किन्तु फिर भी वह जीवन्त व प्रवाहपूर्ण है, कोमलता व लालित्ययुक्त है। कवि ने 'साकेत' की शैली को कथा, नाटक व गीत के तत्वों से निर्मित किया है तथा अलंकृति, लाक्षणिकता, सूक्ति आदि के गुणों से सुसज्जित किया है। इस कृति में छन्दों का वैविध्य भी अवलोकनीय है। कवि ने भावानुरूप छन्दों का प्रयोग किया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है, जो सहज रूप से अलंकृत, प्रसाद गुण सम्पन्न व प्रवाहमयी है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

**जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,**
**हत जिसकी पंकज पंक्ति, अचल-सी काया।**
**उस सरसी-सी आभरण रहित, सितवसना,**
**सिहरे प्रभु माँको देख, हुई जड़ रसना।**

'साकेत' की शैली का आकलन करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह खड़ी बोली के शैशव काल की कृति है। उस समय खड़ी बोली काव्योपयोगी बनाए जाने की प्रक्रिया में थी। अतः इसमें अपेक्षित उदात्तता, गाम्भीर्य व प्रौढ़ता के अभाव को अवहेलित किया जाना चाहिए। डॉ० कमलाकान्त पाठक के शब्दों में "'साकेत' की शैली का महत्त्व इस रूप में देखा जाएगा कि वह अपने युग की सर्वोत्कृष्ट शैली है। पुनरुत्थान-युग की शैलीगत देन है—'साकेत' का रचना-विधान।"

(च) **रस व्यंजना**—भारतीय काव्य शास्त्रीण मान्यता के अनुसार रस काव्य की आत्मा है। महाकाव्य के अन्तर्गत शृंगार, वीर व शान्त में से कोई एक रस अंगी व अन्य अंग रूप में आने चाहिएँ। 'साकेत' में शृंगार रस के वियोग पक्ष की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त शान्त, करुण, वीर, रौद्र व हास्य को भी यथोचित स्थान दिया गया है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग में उर्मिला-लक्ष्मण संवाद के अन्तर्गत संयोग शृंगार तथा नवम सर्ग में विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर परिपाक हुआ है।

**मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप।**
**जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप।।**

× × × × ×

**अवधि-शिला का था उर पर गुरु भार।**
**तिल-तिल काट रही थी उसे दृग जलधार।।**

द्वादश सर्ग में राम-रावण युद्ध के समय रौद्र रस का सजीव निरूपण किया गया है। वीर रस के अन्तर्गत हनुमान से युद्ध का समाचार सुनकर भरत का उत्साह भाव द्रष्टव्य है—

**मनुज मुझे रिपु रक्त चाहिए, डूब मरूँ मैं।**
**मेटूँ अपनी जड़ीभूत जीवन की लज्जा,**
**उठो, इसी क्षण शूर, करो सेना की सज्जा।**

(छ) **जीवनी शक्ति व प्राणवत्ता**—'साकेत' में कर्मण्यता, उत्साह, कर्तव्यपरायणता, सद्भावना, आशा व परहितार्थ त्याग का संदेश दिया गया है। इन्हीं गुणों के कारण उसमें जीवनी शक्ति संवेद प्रवाहित है। डॉ० कमलाकान्त पाठक के अनुसार—**"भारतीय संस्कृति का उत्थान, विश्व बंधुत्व की अनुभूति, असत् का पराभव, मानव गुणों का समुच्चय एवं सत्य की जय का उद्घोष करने वाली कृति निष्प्राण नहीं हो सकती। 'साकेत' की जीवनी शक्ति निश्चय ही अनवरुद्ध है। जहाँ तक प्राणवत्ता का प्रश्न है 'साकेत' में बौद्धिक गाम्भीर्य के अभाव तथा भावुकता के अतिरेक ने उसे सशक्त नहीं होने दिया। उसमें तुलसी के रामचरित मानस जैसी प्राणवत्ता नहीं है।"**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कतिपय त्रुटियों के बावजूद 'साकेत' का महाकाव्यत्व अक्षुण्ण है। जहाँ तक कथा-प्रवाह की असंगति का प्रश्न है वह खटकती तो अवश्य है, लेकिन वह इतना बड़ा दोष नहीं कि उसके समक्ष कृति का महाकाव्यत्व बौना हो जाए। यों भी उसके लिए गुप्त जी की लम्बी बीमारी

Scanned with ACE Scanner

दोषी है, न कि उनकी काव्य प्रतिभा। शैलीगत अप्रौढ़ता के विषय में पहले ही निवेदित किया जा चुका है कि उस काल में खड़ी बोली धीरे-धीरे काव्योपयुक्तता की ओर बढ़ रही थी, अतः उसकी शैली में गाम्भीर्य के अभाव की ओर इतना ध्यान नहीं देना चाहिए। वास्तव में हमें गुप्त जी का आभारी होना चाहिए जिन्होंने खड़ी बोली के शैशव काल में ही 'साकेत' जैसा श्रेष्ठ महाकाव्य रचा, जिसे राम-काव्य परम्परा में तुलसी के 'मानस' के बाद सर्वाधिक सम्मान व प्रतिष्ठा मिली है।

## नवम् सर्ग का काव्य-वैशिष्ट्य

**मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'साकेत' के नवम-सर्ग की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**साकेत के नवम् सर्ग के काव्य-सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**"'साकेत' का नवम सर्ग गुप्त जी की मौलिक उद्भावनाओं का आभास कराता है।"—इस कथन को ध्यान में रखते हुए नवम सर्ग की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर**—आधुनिक काल में विरचित राम कथा-काव्यों के अन्तर्गत 'साकेत' का स्थान सर्वोपरि है, और इसके अन्तर्गत नवम सर्ग का महत्त्व सर्वाधिक है। इस सर्ग में विरहिणी ऊर्मिला की विरह-व्यथा बड़े मनोयोग से वर्णित है। संभवतया ऊर्मिला विषयक प्राचीन कवियों की उदासीनता व उपेक्षा ने ही गुप्त जी को 'साकेत' लिखने के लिए प्रेरित किया। कवि ने विरहिणी व दुःखिनी ऊर्मिला के विषाद को अपने अन्तस की अतल गहराइयों में इतनी गहनता से अनुभव किया कि उसकी अभिव्यक्ति हेतु ही नवम सर्ग अस्तित्व में आया। न केवल इतना, बल्कि इसकी व्याप्ति अन्य सर्गों को पीछे छोड़ गई। इतना लिखकर भी गुप्त जी संतुष्ट न हुए। उन्हें यह सुदीर्घ सर्ग भी अधूरा-सा प्रतीत होता था। यद्यपि इसका इतना फैलाव कई समीक्षकों को औचित्यपूर्ण नहीं लगा। स्वयं **महात्मा गाँधी** ने इसे पढ़ कर आपत्ति की थी, लेकिन जैसा कि पहले निवेदित किया जा चुका है कि गुप्त जी विरहिणी ऊर्मिला की मार्मिक व्यथा से इतने अभिभूत थे कि नवम सर्ग का जो स्वरूप सामने आया है, उससे कमतर पर उनका मन मान ही नहीं सकता था। **कविवर रामधारी सिंह दिनकर** ने साकेत के नवम सर्ग को सबसे सुन्दर माना है। **डॉ. नगेन्द्र** ने भी साकेत में ऊर्मिला के वियोग को सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इस सर्ग का काव्य-वैशिष्ट्य प्रशंस्य है। इस सर्ग के काव्य-वैशिष्ट्य को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है—

1. **ऊर्मिला का विरह-वर्णन**—यह सुदीर्घ सर्ग आधंत ऊर्मिला के अश्रुओं से सिक्त है। इसमें न घटनात्मकता है, न कथा का विकास; मात्र ऊर्मिला का विरह वर्णन व्याप्त है। गुप्त जी ने अपने अन्तस की समूची करुणा को संजो कर ऊर्मिला की विरह-व्यथा को व्यंजित किया है। इसका आकलन करते हुए **डॉ. कमलाकांत पाठक** ने लिखा है—

**'ऊर्मिला का विरह-वर्णन उसके चरित्र के अंतर्बाह्य सभी पक्षों का यथोचित व्यक्तिकरण करता है। इसके द्वारा वियोगिनी का व्यक्तित्व स्पष्ट हो सका है। उसकी आदर्शनिष्ठ गरिमा, प्रेमनिष्ठ उत्कण्ठा, आवेशमयी मनोदशा और परहित चिन्ता भी प्रकट हुई है।'** नवम सर्ग में ऊर्मिला का प्रोषितपतिका का रूप वर्णित है। विरह वर्णन में कवि ने एक ओर परम्परामुक्त पद्धति को अपनाते हुए षड्ऋतु वर्णन व प्रकृति के उद्दीपन रूप को अंकित किया है, तो दूसरी ओर उसमें संवेदना, उदारता व परदुःखकातरता दर्शा कर मौलिकता का परिचय दिया है। इस प्रकार ऊर्मिला का विरह वर्णन बहुमुखी है—वह कभी एक साधारण विरहिणी प्रतीत होती है, तो कभी आदर्श मर्यादानिष्ठ वियोगिनी। कहीं-कहीं विरहावस्था के अन्तर्गत भी उसका गृहिणी का रूप उभर आता है।

ऊर्मिला को अहनिश अपने प्रियतम का ध्यान बना रहता है। एक क्षण के लिए भी वह विरह के संताप से मुक्ति नहीं पाती। कवि ने उसकी इस दशा को बड़े मनोयोग से अंकित किया है—

**मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप.**
**जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप।**

Scanned with ACE Scanner

**आँखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,**
**हुआ योग से भी अधिक उसका विषम-वियोग।**

ऊर्मिला नवविवाहिता थी, लेकिन दुर्भाग्य से उसे चौदह वर्ष की दीर्घ अवधि का विरह-विषाद सहना पड़ा। उसकी स्थिति वास्तव में कारुणिक है–

**अवधि-शिला का उर पर था गुरु-भार,**
**तिलतिल काट रही थी दृग-जल-धार।**

ऊर्मिला को संयोगकालीन दाम्पत्य के सरस क्षणों की स्मृति बार-बार सताती है। वह अपनी सखी सुलक्षणा के समक्ष अपने प्रियतम की विनोदी व प्रेमल प्रकृति की प्रशंसा करते नहीं अघाती। अब उसके विरह संतप्त जीवन में न वह उल्लास है, न माधुर्य। वह सदैव प्रियतम से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहती है–

**यही आता है इस मन में**
**छोड़ धाम धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में।**
**बीच-बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,**
**जब वे निकल जाये तब लेटूँ उसी धूल में लोट।**

**2. मौलिकता**–निःसंदेह गुप्त जी ने ऊर्मिला के विरह वर्णन में परम्परा का पालन किया है। शास्त्रोक्त विरहजन्य काल दशाओं का वर्णन भी किया है। कहीं-कहीं उनका यह वर्णन ऊहात्मक व अतिशयोक्तिपूर्ण भी हो गया है, लेकिन ऐसे स्थल अधिक नहीं। गुप्त जी ने मौलिकता दर्शाते हुए ऊर्मिला को विरहावस्था में प्रकृति के उद्दीपक विभावों यथा–कोयल, ग्रीष्म, वायु, पपीहे आदि को कोसते नहीं दर्शाया। अपितु उसे करुणामयी व परदुःखकातर दिखाया है। वह मालिन को भी यही कहती है कि वह कलश लेकर लताओं को सिक्त करती रहें, कभी कैंची लेकर उन्हें काटे नहीं। ग्रीष्म के आगमन पर प्राचीन कवियों ने अपनी विरहिणी नायिका को विरह ताप उपचार हेतु उशीर की आड़, चन्द्रकांतमणि, कर्पूर आदि का प्रयोग करते दर्शाया है, परन्तु 'साकेत' में विरहिणी ऊर्मिला का दूसरा ही रूप दृष्टिगत होता है। वह ताप से व्याकुल नहीं होती, बल्कि सखी को उसका स्वागत करने के लिए कहती है–

**आया अपने द्वार तप, तू दे रही किवाड़।**
**सखि, क्या मैं बैठूँ विमुख ले उशीर की आड़?**

पावस ऋतु आने पर वह परम्परागत वियोगिनियों के समान काम के वशीभूत होकर आहें नहीं भरती, अपितु सकारात्मक दृष्टिकोण दिखाते हुए मेघों को उद्‌बोधित करती है–

**दरसो परसो घन बरसो!**
**सरसो जीर्ण शीर्ण जगती के तुम नव यौवन बरसो**
**जड़ चेतन में बिजली भर दो ओ उद्‌बोधन, बरसो।**
**चिन्मय बनें हमारे मृण्मय पुलकाकुंर बन, बरसो।**

उसकी सहानुभूति व करुणा कोक, मकड़ी, पीतपत्र इत्यादि के प्रति भी वही है। वह उन्हें भी कष्ट में नहीं देख सकती–

**तुम हो नीरस शरीर,**
**मुझमें हे नयन-नीर,**
**इसका उपयोग वीर,**
**मुझको बतलाओ,**
**लू मैं आँचल पसार, पीत पत्र, आओ।**

इसके अतिरिक्त ललित कलाओं का अभ्यास बनाए रखने के लिए ऊर्मिला एक कन्या-शाला खुलवाना चाहती है। विरह-व्याकुलता के होते हुए भी वह न तो प्रियजनों को भूलती है, न प्रजा को। अपने देवर शत्रुघ्न से कृषकों की कुशलता के विषय में भी पूछती है। वह **'सच्चा राज्य प्रस्तुत हमारे कर्षक करते हैं,'** जैसे उद्‌गार भी व्यक्त करती है।

**3. प्रकृति चित्रण**–नवम सर्ग के अन्तर्गत प्रकृति चित्रण भी ध्यान आकृष्ट करता है। प्रायः यह प्रकृति चित्रण विरहिणी ऊर्मिला के विरहोद्‌गारों की पृष्ठभूमि या उद्दीपन विभाव को प्रस्तुत करने के लिए किया गया

Scanned with ACE Scanner

है। कहीं-कहीं प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण भी हुआ है। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित पद्यांश में कमल की गरिमा का गान किया गया है–

**अतुल अम्बु कुल-सा अमल भला कौन है अन्य?**
**अम्बुज, जिसका जन्य तू धन्य, धन्य ध्रुव धन्य।**
**साधु सरोवर-विभव-विकास।**
**खिल सहस्रदल, सरस-सुवास।**

इसी प्रकार नदी की धारा का नैसर्गिक सौंदर्य 'सखि' निरख नदी की धारा' शीर्षक गीत में प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ यह गीतांश द्रष्टव्य है–

**लोल लहरियाँ डोल रही हैं,**
**भ्रू-विलास-रस घोल रही हैं,**
**इंगित ही में बोल रही हैं,**
**मुखरित कूल किनारा।**
**सखि, निरख नदी की धारा।**

कभी-कभी प्रकृति के उपादानों को निहार कर ऊर्मिला को अपने प्रियतम का आभास भी होता है, यथा **'निरख सखी, ये खंजन आयें,'** शीर्षक गीत में खंजन पंछी ऊर्मिला को लक्ष्मण के चंचल नयनों की याद दिलाता है। संक्षेप में नवम सर्गान्तर्गत प्रकृति चित्रण उत्तम बन पड़ा है।

**4. गीतात्मकता**–गीतात्मकता नवम सर्ग की उल्लेख्य विशिष्टता है। गुप्त जी की काव्याभिव्यक्ति प्रायः सीधी-सपाट व अभिधात्मक होती है, लेकिन नवम सर्ग में उन्होंने कई सुन्दर व सरस गीतों की सृष्टि की है। इनमें से कुछ गीत छायावादी गीतों के समान उत्कृष्ट बन पड़े हैं, विशेष रूप से **'वेदने तू भी भली बनी,' 'विरह संग अभिसार भी,' 'दोनों ओर प्रेम पलता है,' 'दरसो परसो धन बरसो,' 'निरख सखी, ये खंजन आये,'** इत्यादि गीत।

गीति काव्य के विषय में **बाबू श्याम सुन्दर दास** ने लिखा है कि **"गीति-काव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करता है और बाह्य जगत को अपने अन्तःकरण में ले जाकर उसे अपने भावों से रंजित करता है। आत्माभिव्यंजना संबंधी कविता गीति-काव्य में ही छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक जान पड़ती है।"**

गुप्त जी ने भी विरहिणी ऊर्मिला के गहन विषाद को अपनी अन्तरात्मा में अनुभव किया है। उसे अपने भावों से रंजित कर मार्मिक गीतों का रूप दिया है। दीपक पर जलते पतंग को निहार कर विरहिणी ऊर्मिला को अपनी अवशता का बोध होता है। पतंग के निःस्वार्थ प्रेम को देख उसके अवरुद्ध कण्ठ से यह गीत तरंगायित हो उठता है–

**दीपक के जलने में आली**
**फिर भी है जीवन की लाली**
**किंतु पतंग भाग्य-लिपि काली, किसका बस चलता है!**
**दोनों ओर प्रेम पलता है।**

ऊर्मिला को अहर्निश अपने प्रियतम की सुध बनी रहती है। यहाँ तक कि प्रकृति के विविध उपादानों में भी उसे अपने प्रियतम की झलक दिखाई देती है। **'खंजन' पंछी** को देखकर उसे अपने प्रियतम के मनभावन नयन याद हो आते हैं। उसके अधरों पर यह गीत थिरकने लगते हैं–

**निरख सखी, ये खंजन आये,**
**फेरे मेरे उन रंजन ने नयन इधर मन भाये।**
**फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,**
**घूमें वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ छायें।**

Scanned with ACE Scanner

नवम सर्ग के अन्तर्गत संकलित प्रायः सभी गीत सरस बन पड़े हैं। कोमलकांत पदावली व प्रवाहमयी भाषा ने उनके सौष्ठव को बढ़ाया है। आत्मानुभूतिमयता सहज, सरल व्यंजना, लयात्मकता, आकार लघुता आदि तत्वों के इन गीतों को उत्कृष्टता प्रदान की है।

5. **छन्दगत वैविध्य**—नवम सर्ग आद्यंत ऊर्मिला की विरह व्यथा से अनुप्राणित है। एक ही विषय को पचास पृष्ठों पर अंकित करने से उसमें एकरसता का आ जाना स्वाभाविक है। कवि ने इसी एकरसता को तोड़ने हेतु विविध छन्दों का प्रयोग किया है। इसके साथ ही विरहान्तर्गत ऊर्मिला की विविध मनोदशाओं को उनके अनुरूप छन्दों में व्यक्त करना भी कवि कौशल का परिचायक है। वियोगानुभूति की अनेकरूपता का निर्वाह एक ही छंद में नहीं किया जा सकता। डॉ. सहल भी इसी मत के हैं। उन्होंने नवम सर्ग के काव्य-वैभव का आकलन करते हुए लिखा है कि वियोग की एकरसता को छन्दों की विविधता के द्वारा ग्राह्य तथा संवेद्य बनाया गया है। अनेकरूपमयी विरह-विह्वलता को नानावृत्तमयी बना देना कवि-कौशल ही नहीं समझा गया, वरन् वह मनोवैज्ञानिक उद्भावना भी माना गया है।

नवम सर्ग का प्रारम्भ मंदाक्रांता छन्द से करके अन्त लघु बरवै छन्द से किया गया है। इसके बीच में दोहा, गीतिका, उपेन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, सार, राधिका, सोरठा, सवैया, कुंडलिया, घनाक्षरी, रोला आदि छन्दों का दक्ष प्रयोग किया गया है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है—

**उसे बहुत थी विरह के, एक दण्ड की चोट।**
**धन्य सखी देती रही, निज पत्रों की ओट।।**

उक्त दोहे में विरह के दण्ड की चोट का वर्णन है। वियोग के कारण वियोगिनी के हृदय में चंचलता बनी रहती है। वह आशा और निराशा के बीच डोलती रहती है। ऐसी ही गति उपेन्द्रवज्रा की है—

**मिलाप था दूर अभी धनी का**
**विलाप ही था बस का बनी का।**
**अपूर्व आलाप वही हमारा,**
**यथा विपंची—दिर, दार दारा।**

ऊर्मिला मात्र अपनी व्यथा से ही पीड़ित नहीं, अपने प्रियजनों की आँखों में अपने प्रति करुणा व संवेदना देख वह और भी व्याकुल हो उठती है। ऐसी दशा का वर्णन करने के लिए गुप्त जी ने स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया है, जिसकी आरोह-अवरोह से युक्त लय उसकी गहन वेदना को साकार बनाती है—

**रोती हैं और टकी निरख कर मुझे दीन सी तीन सासें,**
**होते हैं देवर श्री नत, हत बहनें छोड़ती है उसासें**
**आली, तू ही बता दे, इस विजन बिना मैं कहाँ आड़ा जाऊँ?**
**दीना हीना अधीना ठहर कर जहाँ शांति दूँ और पाऊँ।**

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है कि **"साकेत के विरह-वर्णन की शैली अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है। वहाँ बदलते हुए छन्दों में नित्य प्रति के जीवन से सम्बद्ध भावनाओं की इस प्रकार व्यंजना हुई है कि यह प्रतीत होता है कि मानो कोई विरहिणी करवटें बदल-बदल कर सभी बातों को झाँकती हुई रोदन कर रही हो।"**

**भाषा-सौष्ठव**—'साकेत' के अन्य सर्गों की भाँति विवेच्य सर्ग में भी तत्सम् प्रधान खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। कतिपय स्थलों को छोड़कर प्रायः भाषा सहज, सरल व प्रवाहमयी है। यह प्रसाद व माधुर्य गुण सम्पन्न है। [illegible] हेतु कोमलकांत शब्दावली युक्त व माधुर्य गुण सम्पन्न भाषा उपयुक्त मानी जाती है। गुप्त जी ने विरहिणी के उद्गारों को ऐसी ही मदुल भाषा में व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

**रहती मैं, चातकि, फिर बोल,**
**दे खारी आँसू की बूँदें दे सकती यदि मोल।**
**कर सकते हैं क्या मोती भी उन बोलों की तोल?**
**फिर भी फिर भी इस झाड़ी के झुरमुट में रस घोल।**

गुप्त जी का शब्द भण्डार अत्यन्त व्यापक है। उनके द्वारा प्रयुक्त अधिकतर शब्द संस्कृत से लिए गए हैं। उनका चयन व प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है। 'उपमोचितस्तनी' तथा 'विविध वृत्तान्ते' जैसे प्रयोग अवश्य ही खटकते हैं, अन्यथा कवि का भाषा पर अच्छा अधिकार है। डॉ. नगेन्द्र ने नवम सर्ग की भाषा की प्रौढ़ता की प्रशंसा की है। इस सर्ग में दोहे अर्थपूर्ण, कसे व समस्त् हैं–

**प्रभु को निष्कासन मिला, मुझको कारागार।**
**मृत्यु-दण्ड उन तात को, राज्य तुझे धिक्कार।।**

**अलंकार**–नवम सर्ग में प्रयुक्त भाषा सहज रूप से अलंकृत है। अलंकारों का कुशल प्रयोग भावोत्कर्ष में सहायक रहा है। गुप्त जी ने अर्थालंकारों के साथ-साथ शब्दालंकारों को भी सहजता से अपनी भाषा में स्थान दिया है। अर्थालंकारों में मुख्य रूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, विशेषोक्ति, विभावना, प्रतीप, मानवीकरण, अनन्वय, व्यतिरेक तथा शब्दालंकारों में यमक, अनुप्रास, श्लेष, वीप्सा व पुनरुक्ति प्रकाश आदि अलंकार प्रयुक्त हैं। उदाहरणार्थ कुछ अलंकारों का चारु प्रयोग द्रष्टव्य है–

**रूपक**– मेरे चपल यौवन बाल!
अचल अंचल में पड़ा सो मचलकर मत साल।

**अनन्वय**– तरसूँ मुझ-सी मैं ही, सरसे हरसे-हँसे प्रकृति घारी,
सबको सुख होगा तो मेरी भी आयेगी बारी।

**मानवीकरण**– श्रुतिपुट लेकर पूर्व-स्मृतियाँ खड़ी यहाँ पर खोल,
देख आप ही अरुण हुए हैं, उनके पाण्डु कपोल।

**उपमा**– निकल हंस से केकि-कुञ्ज से,
निरख वे खड़े पुण्य-पुञ्ज से।

**विशेषोक्ति**– बैठी है तू षट-पदी निज सरसिज में लीन।
सप्तपदी देकर यहाँ बैठी मैं गति-हीन।

**पुनरुक्ति प्रकाश**–छोड़-छोड़, फूल मत तोड़ आली।

**वृत्यनुप्रास**– दयित-दीप्ति ही दीखती वहाँ।
अब कृती कहाँ कौन अन्य है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि नवम सर्ग में ऊर्मिला की विरह-वेदना का विशद व व्यापक अंकन हुआ है। यह अंकन परम्परामुक्त होते हुए भी गुप्त जी की मौलिक उद्भावनाओं से ताजगी का अहसास कराता है। सरस गीतों की सृष्टि व विविध छन्दों के प्रयोग ने अभिव्यंजना कौशल को समृद्ध किया है। संक्षेप में कथ्य व शैली, दोनों दृष्टियों से यह सर्ग विलक्षण बन पड़ा है। दूसरा काव्य-वैशिष्ट्य प्रशंस्य व प्रभावशाली है।

❐

## 4. उर्मिला का चरित्र-चित्रण

**? 'साकेत' के आधार पर उर्मिला का चरित्र-चित्रण कीजिए।**

*अथवा*

**साकेत के नवम् सर्ग के आधार पर 'उर्मिला' की चारित्रिक विशेषताएँ लिखिए।**

*अथवा*

**"उर्मिला एक आदर्श कुलवधू होने के साथ-साथ अन्य गुणों की भी खान है।" इस कथन के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।**

उत्तर–गुप्त जी के भक्त-हृदय ने 'साकेत' के अन्तर्गत भले ही राम को श्रद्धा से उच्चासन पर बिठाया हो, लेकिन उनके कवि-हृदय ने सर्वाधिक महत्त्व ऊर्मिला को दिया है। यों तो प्रत्येक सर्ग में उसकी उपस्थिति द्रष्टव्य है, लेकिन नवम सर्ग तो विशेष रूप से उसे ही समर्पित है। प्राचीन कवियों द्वारा ऊर्मिला के प्रति की गई उपेक्षा का प्रक्षालन करने हेतु ही उन्होंने 'साकेत' को इस स्वरूप में रचा।

Scanned with ACE Scanner

**डॉ. नगेन्द्र** ने लिखा है कि सभी कवियों की आत्मा में एक विरहिणी का निवास होता है, जो अजर-अमर है। यही विरहिणी 'कालिदास के हृदय में शकुन्तला, भवभूति के हृदय में सीता, जायसी की आत्मा में नागमती, सूर के अन्तस् में राधा और मीरा के प्राणों में अरूप होकर रोई थी। मैथिलीशरण के हृदय में वही ऊर्मिला बन गई।' इसी विरहिणी की कथा को व्यंजित करने हेतु गुप्त जी ने 'साकेत' की रचना की।

ऊर्मिला गौरवशालिनी नारी है। वह एक आदर्श कुलवधू, प्रेममयी पत्नी व विरह-व्यथिता प्रियतमा है। वह परिहास प्रिय व कला विशारदा है। वह त्याग, धैर्य, मर्यादा शील, कर्तव्यपरायणता तथा करुणा की मूर्तिमत रूप है। गुप्त जी ने उसके चरित्र को बड़े मनोयोग से अंकित किया है। उसका चरित्र लक्ष्मण, राम, सीता, भरत, कैकेयी, माण्डवी आदि पात्रों के बीच विकसित होता है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "**'साकेत' के सभी पात्रों का ऊर्मिला के चरित्र-विकास से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध है। कवि इस विषय में सदैव सतर्क रहा है। लक्ष्मण का जीवन तो उसके जीवन से प्रकाश से छाया की भाँति लिपटा हुआ है ही–उनकी निर्मल वीरवृत्ति का उसके चरित्र-विकास से प्रत्यक्ष संबंध है। उधर राम की कर्तव्यपरायणता, सीता की एकांत पति-लीनता, भरत की साधुता, कैकेयी का क्षुधित पुत्र-स्नेह और सुमित्रा का उग्र मातृत्व भी उसके चरित्र विकास में सहायक होते हैं।**" ऊर्मिला के चरित्र की विशिष्टताओं का विवेचन इस प्रकार से किया जा सकता है–

**आकर्षक व्यक्तित्व**–ऊर्मिला का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। वह अनिंद्य सुंदरी है। उसके विलक्षण रूप का वर्णन करते हुए गुप्त जी ने लिखा है–

**यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई,**
**आप विधि के हाथ से ढाली गई।**
**कनक-लतिका भी कमल-सी कोमला,**
**धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला!**

उसके विशाल नेत्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो हीरको में गोल नीलम जड़े हों। उसके अधर पद्म तथा दाँत मोतियों से बने प्रतीत होते हैं। उसके केश मेघों के समान हैं। वह जिधर भी देखती है उधर दामिनी सी दमकने लगती है। कवि उसके हृदय के विषय में कोई उपमान नहीं ढूँढ़ पाता और यही कहकर संतोष कर लेता है कि **'वह हृदय ही है कि जिससे है बना।'** वह प्रेम पूरित, सरस व कोमल है। वह दिव्य भावों का पुञ्ज है। कलाओं में भी उसकी गहन रुचि है। चित्रकला में वह सिद्धहस्त है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई स्वर्गीय पुष्प धरती पर खिला हो–

**स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला;**
**नाम है इसका उचित ही 'ऊर्मिला'।**
**शील-सौरभ की तरंगें आ रही,**
**दिव्य-भाव भवाब्धि में हैं ला रही।**

**वाग्विदग्धा व परिहास प्रिय**–विरह-वियुक्त होने से पूर्व ऊर्मिला को विनोदी प्रकृति की दर्शाया गया है। कवि ने उसके दाम्पत्य जीवन के कई ऐसे सरस प्रसंग अंकित किए हैं, जिनसे उसका वाक्-चातुर्य व परिहास प्रियता प्रकट होती है। एक बार लक्ष्मण उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वह धन्य हैं जो मोहनी-सी मूर्ति का सामीप्य लाभ कर रहे हैं–

**धन्य जो इस योग्यता के पास हूँ;**
**किंतु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ।**

ऊर्मिला अपनी प्रत्युत्पन्नमति तथा वाग्वैदग्ध्य का परिचय देते हुए तुरन्त उत्तर देती है–

**दास बनने का बहाना, किसलिये?**
**क्या मुझे दासी कहाना, इसलिये?**

इसी प्रकार एक बार लक्ष्मण मज़ाक करते हुए ऊर्मिला से कहते हैं कि मेरा तोता तुमसे जनकपुर की एक सुकुमारी सलौनी सारिका की फरमाइश कर रहा है, प्रत्युत्तर में ऊर्मिला कहती है–

**और भी तुमने किया है कुछ कभी,**
**या कि सुग्गे ही पढ़ाये हैं अभी?**

Scanned with ACE Scanner

**आदर्श कुल वधू**–ऊर्मिला रघुकुल की वधू है। वह उसकी मर्यादा व प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रखती है। विरहावस्था में अथवा उससे पूर्व वह ऐसा कोई कार्य नहीं करती, जिससे रघुकुल अथवा उसके पति की प्रतिष्ठा पर आँच आए। पति को भाई संग वन जाते देख न वह साथ जाने का आग्रह करती है, न ही उसके पथ की बाधा बनती है। वह अपनी व्यथा को मूक भाव से भीतर ही भीतर पी जाती है। उसकी दयनीय दशा देख सीता की करुणा इन शब्दों में व्यक्त होती है–

**आज भाग्य है जो मेरा।**
**वह भी हुआ न हा तेरा!**

वह केवल अपने पति से ही प्रेम नहीं करती, परिवार के सभी सदस्यों के प्रति सादर भाव से सम्पृक्त है। पुत्र-वियोग में राजा दशरथ के स्वर्ग सिधारने पर ऊर्मिला इस शोक को सहन नहीं कर पाती। वह बेसुध हो कर गिर पड़ती है–

**माँ, कहाँ गये वे पूज्य पिता,**
**कर के पुकार यों शोक सिता।**
**ऊर्मिला सभी सुध बुध त्यागे,**
**जा गिरी कैकेयी के आगे।**

इसी प्रकार वह यह जानते हुए भी कि उसकी वियुक्त दशा के लिए मूल रूप से कैकेयी ही उत्तरदायी है वह चित्रकूट प्रसंग में निराश-हताश कैकेयी को ढाँढस बंधाते हुए कहती है–

**जीती है अब भी अम्ब ऊर्मिला बेटी,**
**इन चरणों में चिरकाल रहूँ मैं लेटी।**

विरहकाल में वह राजभवन त्याग कर राजोद्यान में इसीलिए आ जाती है कि वहाँ उसकी सासें उसे व्यथित देखकर दुःखी होती रहती हैं। वह नितान्त दुःख में डूब नहीं जाती अपितु अपने देवर से प्रजा, कृषि व कृषकों का हाल भी पूछती है। इसी प्रकार एकादश सर्ग में हनुमान के चले जाने के बाद अयोध्यावासी शत्रुघ्न के नेतृत्व में लंका पर युद्ध करने के लिए तैयार होते हैं। इस अवसर पर भी ऊर्मिला एक वीर की पत्नी व क्षत्राणी के आदर्श का निर्वाह करती हुई सेना के साथ जाने को उद्यत हो जाती है। उसके इन्हीं गुणों को देखते हुए राम वन से लौट कर उसकी चारित्रिक-गरिमा के विषय में जो कहते हैं वह उल्लेखनीय है–

**तूने तो सहधर्म-चारिणी के भी ऊपर।**
**धर्म-स्थापन किया भाग्य-शालिनी, इस भूपर।।**

**अनन्य प्रेमिका**–ऊर्मिला अपने प्रियतम लक्ष्मण के प्रति पूर्ण भाव से समर्पित है। वह उसे सच्चे हृदय से प्रेम करती है। उसके वनगमन का समाचार सुनते ही वह धड़ाम से धरती पर गिर जाती है। उसके वियोग में वह खाना-पीना भी भूल जाती है। धीरे-धीरे वह कृशकाय हो जाती है। अहर्निश उसकी आँखों में प्रियतम की छवि बनी रहती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रिय ने वनगमन करके उसके प्रेम की परीक्षा लेनी चाही है–

**प्रिय ने सहज गुणों से, दीक्षा दी थी मुझे प्रणय, जो तेरी,**
**आज प्रतीक्षा द्वारा, लेते हैं वे यहाँ परीक्षा मेरी?**

संयोगकाल के सरस प्रेम प्रसंग ऊर्मिला को भूलाये नहीं भूलते। वह उन्हीं के सहारे अपने विरह काल को काटती है। बार-बार उनका स्मरण कर वह अपनी सखी के समक्ष अपना हृदय खोलती है–

**आलि, इसी पाणी में हंस बने बार-बार हम विहरे,**
**सुध कर उन छींटों की मेरे ये अंग आज सिहरे।**

अपने से दूर वनवास कर रहे प्रियतम का गुणगान करके उसे उनकी अर्चना करने का-सा संतोष मिलता है–

**हृदयस्थित स्वामी की**
**स्वजनि, उचित क्यों नहीं अर्चा,**
**मन सब उन्हें चढ़ावे,**
**चन्दन की एक क्या चर्चा?**

Scanned with ACE Scanner

उसके हृदय की अभिलाषा है कि वन में जाकर वह चुपके से अपने प्रियतम को निहारे। जिस मार्ग से वे होकर गुजरें, वह उसकी धूल में लोट-लोट जाए। वह उनसे मिलने के लिए इतनी व्यग्र है कि स्वयं अवधि बन मिट जाना चाहती है–

**आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ।**
**मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ।**

**विरह-व्यथिता**–ऊर्मिला प्रोषितपतिका विरहिणी है। उसे चौदह वर्ष तक अपने प्रवासी प्रियतम की प्रतीक्षा करनी है। वह अहर्निश विरहाग्नि में जलती रहती है। उसे पल भर भी चैन नहीं। उसके नेत्र आँसुओं से सिक्त रहते हैं। वह दिन-रात अपने प्रियतम की मानसिक आराधना में लीन रहती है।

**मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,**
**जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप!**
**आँखों में प्रियमूर्ति थी, भूले थे सब भोग,**
**हुआ योग से भी अधिक उसका विषम-वियोग!**

वह ध्यान बाँटने के लिए कभी चित्रकला का सहारा लेती है, तो कभी संगीत का, लेकिन उसकी व्यथा कम नहीं होती। खाने-पीने में भी उसकी रुचि नहीं रही। सखी उसके लिए विभिन्न व्यंजन लेकर आती है, लेकिन उसे सब 'गुड़-गोबर' प्रतीत होता है। प्रियतम के बिना उसे भोग भी रोग लगता है। उसे बार-बार अपने प्रियतम के साथ गुजारे संयोग के पल याद आते हैं। वह उन्हें याद कर सिहर उठती है, लेकिन अब उसके चारों ओर विषाद छाया है, उसकी हृदय-वेदना से प्रियतम परिचित नहीं हो पाते–

**स्वजनि रोता है मेरा गान,**
**प्रिय तक नहीं पहुँच पाती है उसकी कोई तान।**

गुप्त जी की ऊर्मिला परम्परागत विरहिणियों से कई बातों में भिन्न है। वह उनकी भाँति प्राकृतिक उद्दीपनों को कोसती नहीं, अपितु उनके प्रति सहृदया-सा व्यवहार करती है। ग्रीष्म ऋतु आने पर वह सखी को द्वार बंद करने से रोकती है, बल्कि सूर्य के ताप का गुणगान करती है। वह शीत ऋतु का भी स्वागत करती है। वह मेघों को देख कर आहें भरते हुए उन्हें कोसती नहीं, बल्कि उनका उद्‌बोधन करते हुए कहती है–

**दरसो परसो घन बरसो,**
**सरसो जीर्ण शीर्ण जगती के तुम नवयौवन, बरसो।**
**घुमड़ उठो आषाढ़ उमड़ कर पावन सावन, बरसो।**

**करुणामयी**–ऊर्मिला एक सहृदया नारी है। उसका हृदय करुणा से आपूरित है। विरहावस्था के अन्तर्गत भी वह अपने आस-पास करुणा की धारा प्रवाहित करती रहती है। उससे मालियों के द्वारा लताओं का काटना भी सहन नहीं होता–

**सींचे ही बस मालिनें, कलश लें, कोई न ले कर्त्तरी,**
**शाखी फूलें फलें यथेच्छ बढ़के, फैले लताएँ हरी।**

स्वयं अत्यधिक दुःखी होते हुए भी वह दूसरों के दुःखों को दूर करने का प्रयास करती है। उसकी परदुःखकातरता श्लाघनीय है। वह कोक, मकड़ी, भ्रमर, पीत पल्लव आदि को सांत्वना देती है, उन्हें ढाँढ़स बंधाती है–

**कोक, शोक मत कर हे तात,**
**कोकि, कष्ट में हूँ मैं भी तो सुन तू मेरी बात।**
**धीरज धर, अवसर आने दे, सह ले यह उत्पात,**
**मेरा सुप्रभात वह तेरी सुख-सुहाग की रात!**

अपनी करुणा के वशीभूत हो वह सरस घटा के साथ बरसना चाहती है, ताकि तपती धरा के प्यासे प्राणी व वनस्पति ताप से मुक्ति पा सकें। वास्तव में उसके विषाद ने उसे दूसरों के प्रति अधिक संवेदनशील व परदुःखकातर बना दिया है।

Scanned with ACE Scanner

**कर्तव्य-परायणा**–ऊर्मिला एक कर्तव्यपरायणा नारी है। सुख हो अथवा दुःख वह कर्तव्य को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देती। प्रारम्भ में पति के वनगमन के विषय में सुनकर उसे अच्छा तो नहीं लगता, लेकिन वह अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उसके मार्ग की बाधा नहीं बनती। अपने मन को मार कर रह जाती है। प्रियतम के वनवास के दौरान भी वह यही चाहती है कि उसके प्रियतम उसकी ओर से निश्चित रहकर प्रभु राम व सीता की सेवा करते रहें। एक बार विरह व्यथा के बढ़ जाने पर ऊर्मिला उन्मादग्रस्त हो जाती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके प्रियतम वन से लौट आए हैं। पहले तो वह प्रियतम के दर्शन कर प्रसन्न होती है, लेकिन बाद में उसे यह ध्यान आता है कि वे तो अकेले आए हैं। राम व सीता उनके साथ नहीं हैं। तब उन्मादावस्था में भी उसका कर्तव्यबोध सजग हो जाता है। वह प्रियतम को वापस जाने को कहती है–

**प्रिय, फिरो, फिरो हा! फिरो, फिरो!**
**न इस मोह की घूम से घिरो।**
**विकल मैं यहाँ, किंतु गर्विणी,**
**न कर दो मुझे नष्ट पर्विणी**
**घर फिरे तुम्हें मोह से कहीं**
**तब हुए तपोभ्रष्ट क्या नहीं?**
**च्युत हुए अहो नाथ, जो यथा,**
**धिर! वृथा हुई ऊर्मिला व्यथा।**

कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर ही वह विरहावस्था में भी शत्रुघ्न से राज्य व कृषकों इत्यादि का हाल-चाल पूछती है। इसी प्रकार द्वादश सर्ग में जब शत्रुघ्न सेनाएँ तैयार कर अपने भाइयों के सहायतार्थ लंका की ओर कूच करना चाहता है तो वह हाथ में शूल पकड़, एक वीरांगना की भाँति वहाँ आकर सैनिकों का मनोबल बढ़ाती है। उन्हें उद्‌बोधित करते हुए वह कहती है–

**विन्ध्य-हिमाचल-भाल भला! झुक जाय न धीरो,**
**चन्द्र-सूर्य-कूल-कीर्ति-कला ढक जाय न वीरो।**
**चढ़कर उतर न जाय, सुनो कुल मौक्तिक मानी,**
**गंगा-यमुना-सिंधु और सरयू का पानी।**

**आशावादी**–ऊर्मिला की यह उल्लेख्य विशेषता है कि वह जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखती है। वह अभावों में भी भाव को देखती है। चौदह वर्ष की दीर्घ अवधि वह इसी आशावादिता के सहारे काटती है। प्रारम्भ में उसे विरह-वेदना व्यथित करती है, लेकिन धीरे-धीरे वह जीवन में वेदना के महत्त्व को भी पहचान जाती है।

**वेदने तू भी भली बनी।**
**पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।**
**नई किरण छोड़ी है तूने, तू वह हीर-कनी।**

वेदना ने उसको गहन दृष्टि दी है। वह जीवन को अपेक्षाकृत बेहतर समझने लगी है। वह भली-भाँति समझ गई है कि–

**विरह संग अभिसार भी,**
**भार जहाँ आभार भी।**
**जहाँ विरह ने गार दिया है किया वहाँ उपकार भी।**
**सुधबुध हर ली, किंतु दिया है काल-ज्ञान विचार भी।**

उसे यह विश्वास है कि एक दिन उसके कष्ट समाप्त हो जाएंगे। दीर्घ अवधि धीरे-धीरे कट जाएगी। तब प्रियतम से मिलन होगा। वह कोयल को समझाते हुए आशा का ही संचार करती है–

**री, आवेगा फिर भी बसन्त,**
**जैसे मेरे प्रिय प्रेमवन्त।**

Scanned with ACE Scanner

दुःखों का भी है एक अन्त,
हो रहिए दुर्दिन देख मूक।
ओ कोइल, कह यह कौन कूक?

एक दिन उसकी प्रतीक्षा सफल होती है। उसकी आशा फलीभूत होती है और उसके प्रियतम लौट आते हैं। अन्त में कहा जा सकता है कि ऊर्मिला एक आदर्श कुलवधू के रूप में पाठक के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ती है। दीर्घ अवधि जैसे-जैसे व्यतीत होती है, ऊर्मिला का चारित्रिक उत्थान होता जाता है। वह विरह-व्यथा को बड़ी शालीनता व धैर्य से सहन करती है। त्याग, धैर्य, करुणा, परदुःखकातरता व सकारात्मक दृष्टिकोण ने उसके चरित्र को गौरवान्वित किया है। सुदीर्घ अवधि तक उसकी कठिन तपस्या उसे एक साधिका का स्वरूप प्रदान करती है। इतने मनोयोग से उसका चरित्रांकन करके गुप्त जी ने प्राचीन कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता व उपेक्षा की भूल का गरिमामय प्रायश्चित किया है। उसका चरित्र वास्तव में अनुकरणीय व प्रशंस्य है।

## . उर्मिला की विरह-व्यंजना

**'साकेत' नवम् सर्ग के आधार पर उर्मिला की विरह-वेदना को स्पष्ट कीजिए।**

*अथवा*

**'साकेत' का नवम सर्ग उर्मिला की विरह-वेदना का एक पक्का सबूत है—इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।**

**उत्तर**—विरह प्रेम का अपेक्षाकृत अधिक उज्ज्वल, गहन, गम्भीर एवं तन्मयतापूर्ण पक्ष है। विरह की शीतल अग्नि में तप कर प्रेम कुन्दन सदृश निखर जाता है। विरह में ही वास्तविक प्रेम की परख होती है। उत्कृष्ट कवियों का मानस संयोग की अपेक्षा वियोग में अधिक रमा है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा था कि मेरे हृदय में एक विरहिणी नारी बैठी है, जो अपने दुख का गीत सुनाया करती है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में यह विरहिणी अजर-अमर है। .... सभी कवियों की आत्मा में इसका निवास है। यही विरहिणी कालिदास के हृदय में शकुन्तला, भवभूति के हृदय में सीता, जायसी की आत्मा में नागमती, सूर के अन्तस् में राधा और मीरा के प्राणों में अरूप होकर रोई थी। मैथिलीशरण के हृदय में वही उर्मिला बन गई। निःसन्देह गुप्त जी ने 'साकेत' के अन्तर्गत अपने हृदय की सारी करुणा को संजोकर उर्मिला की विरह-व्यथा को व्यंजित किया है।

'साकेत' का सम्पूर्ण नवम सर्ग वियुक्ता उर्मिला को समर्पित है। यह एक सर्ग उसकी आहों से उत्पन्न है तथा उसके आँसुओं से सिक्त है। दिनकर के अनुसार 'साकेत' का नवम् सर्ग सबसे सुन्दर और वही सबसे दीर्घकाय भी है। डॉ० नगेन्द्र ने भी उसे 'साकेत' की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना कहा है। इस सन्दर्भ में डॉ० कमलाकान्त पाठक के विचार उद्धरणीय हैं। वे लिखते हैं—

**"उर्मिला का विरह-वर्णन उसके चरित्र के अंतर्बाह्य सभी पक्षों का यथोचित व्यक्तीकरण करता है। इसके द्वारा वियोगिनी का व्यक्तित्व स्पष्ट हो चुका है। उसकी आदर्शनिष्ठ गरिमा, प्रेमनिष्ठ उत्कण्ठा, आवेशमयी मनस्थिति और परहित-चिन्ता भी प्रकट हुई है। उसके वियोग का आदर्श असामान्य है—**

**"डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,**
**जिए उर्मिला करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।।"**

'साकेत' के अन्तर्गत विरह-वर्णन एक ओर प्राचीन काव्य परम्परा से प्रभावित है, तो दूसरी ओर आधुनिक युग बोध का संस्पर्श भी लिए है, जिसमें मानवीय मूल्य ही सर्वोपरि हैं। एक ओर उसमें काव्यशास्त्रोक्त विरहजन्य कामदशाओं का वर्णन है, तो दूसरी ओर उसमें उदात्तता, उदारता व परदुखकातरता का समावेश है। अतः गुप्त जी ने पूरे मनोयोग से उर्मिला के वियोग को अनेकविध प्रस्तुत किया है। अपनी कवित्व शक्ति से उसकी विरह व्यथा को जीवन्त कर दिया है—

**मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप।**
**जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप।**

Scanned with ACE Scanner

'साकेत' के अन्तर्गत वियोगिनी उर्मिला के प्रवत्स्यत्पतिका तथा प्रोषितपतिका दोनों रूपों को प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मण के वनगमन की सूचना से लेकर अष्टम सर्ग के अन्तर्गत उनके क्षणिक मिलन तक प्रवत्स्यत्पतिका का रूप है, तदुपरान्त नवम व दशम सर्ग में उसका रूप प्रोषितपतिका का है।

**1. प्रवत्स्यत्पतिका**—प्रिय से विलग होने की सूचना ही व्यथा को जन्म दे देती है। अतः विदाई की बेला का दुख अतीव कष्टकारी होता है। मन को चिंता, व्यथा, मोह, आशंका, एकाकीपन के भाव से विचलित कर देते हैं। राम और सीता के साथ अपने प्रियतम लक्ष्मण के भी वन जाने का समाचार सुन कर उर्मिला भी उक्त भावों से घिर जाती है। उसकी स्थिति तब और भी दयनीय हो जाती है, जब वह सीता के राम के साथ वन जाने के लिए मनुहार करने जाती है—**'अथवा कुछ भी न हो वहाँ, तुम तो हो जो नहीं यहाँ !''** इसी प्रकार माण्डवी व श्रुतिकीर्ति को भी अपने पतियों का संसर्ग उपलब्ध है। विलक्षण व दारुण स्थिति तो केवल उर्मिला की है, तभी तो उसकी माता उसके दुख से द्रवित होकर कहती है—

**मिला न वन ही न भुवन ही तुझको।**

उर्मिला उदारमना है। उसके हृदय में ईर्ष्या का भाव नहीं उठता। अपितु वह अपने मन को समझाती है कि **'हे मन, तू प्रियपथ का विघ्न न बन।'** वह पति के कर्तव्य-पथ से तो हट जाती है, लेकिन आसन्न प्रवास के विषाद को सहन नहीं कर पाती और बेसुध होकर गिर पड़ती है। उर्मिला की दयनीय दशा सबको करुणा से भर देती है। लक्ष्मण से प्रियतमा की यह दशा देखी नहीं जाती। वे आँखें बंद कर लेते हैं। सीता विकल होकर कह उठती है

**आज भाग्य जो है मेरा,**
**वह भी हुआ न हा ! तेरा !**

डॉ० नगेन्द्र इस अवसर की मार्मिकता का आंकलन करते हुए लिखते हैं—**''इस प्रकार कवि ने दूसरों की कातरता के द्वारा वियोगिनी की कातरता की अभिव्यक्ति की है। उक्त भावनाएँ उर्मिला की दयनीयता को पुष्ट करती है।''** वह मौन रह कर ही स्थिति को स्वीकार कर लेती है। अन्य पात्रों द्वारा उसकी कारुणिक स्थिति को उभारने की नियोजना करके गुप्त जी ने कवि-कौशल का परिचय तो दिया ही है, साथ ही उर्मिला की गौरव-गरिमा की भी रक्षा की है।

विरह का विषाद बढ़ने के साथ-साथ उर्मिला क्षीण होती चली जाती है, उसके मुख की कान्ति पीली पड़ जाती है, आँखें अशान्त रहने के कारण कालिमा युक्त हो जाती हैं। उसकी काया सूक्ष्म छाया-सी रह जाती है। अब उसे यह सोचकर खेद होता है कि विदाई के क्षणों में वह क्यों इतनी व्याकुल हो गई कि अपने हृदयोद्‌गार भी प्रियतम से न कह सकी—

**यदि स्वामी-संगिनी रह न सकी,**
**तो क्यों इतना भी कह न सकी।**
**हे नाथ साथ दो भ्राता का,**
**बल रहे मुझे इस त्राता का !**

उर्मिला को इस बात की चिन्ता है कि जाते समय उसकी विकलावस्था के कारण प्रियतम खिन्न मन ही वन को चले गए। अपने वियुक्त पति से उसकी कोई बड़ी अपेक्षा नहीं है। वह तो इतने से ही संतुष्ट है—

**आराध्ययुग्म के सोने पर,**
**निस्तब्ध निशा के होने पर,**
**तुम याद करोगे मुझे कभी**
**तो बस फिर मैं पा चुकी सभी।**

**2. प्रोषितपतिका**—चित्रकूट के क्षणिक मिलन के उपरान्त ऊर्मिला की स्थिति प्रोषितपतिका की हो जाती है, जिसका नवम सर्ग में सविस्तार वर्णन किया गया है। चौदह वर्ष की दीर्घ अवधि को काटना विरहिणी के लिए वास्तव में आसान नहीं; उसके नयन सदैव सजल बने रहते हैं—

**अवधि शिला का उर पर था गुरु भार,**
**तिलतिल कर रही थी दृग-जल-धार।**

Scanned with ACE Scanner

**3. षट्ऋतु वर्णन**–यद्यपि विरह वर्णन के अन्तर्गत षट्ऋतु वर्णन की प्राचीन परम्परा है, लेकिन गुप्त जी ने उसे नए ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने उसका उपयोग केवल उद्दीपन अर्थात् शारीरिक ताप बढ़ाने अथवा आलंकारिक चमत्कार दर्शाने हेतु नहीं किया। एकाकीपन में ऊर्मिला को प्रकृति का साहचर्य प्रिय है। इस प्रकार ऋतु परिवर्तन के प्रभाव स्वरूप उसके हृदय में जाग्रत भावनाओं को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

सर्वप्रथम कवि ने ग्रीष्म का प्रभाव दर्शाया है। यहाँ उन्होंने कालिदास के 'ऋतु संहार' काव्य का अनुसरण किया है। गर्मी के आने पर ताप का उपचार करने हेतु उशीर की आड़, तालवृन्त, स्नान, चन्द्रकान्तमणि, कर्पूर का प्रयोग किया जाने लगा है। परन्तु यहाँ विरहिणी ऊर्मिला का दूसरा ही रूप दृष्टिगत होता है। वह ताप से घबराती नहीं–

**आया अपने द्वार तप, तू दे रही किवाड़।**
**सखि, क्या मैं बैठूँ विमुख ले उशीर की आड़?**

वह ग्रीष्म-ताप से तप का पाठ पढ़ना चाहती है। उशीर की आड़ लेकर उससे विमुख नहीं होना चाहती। शीतलता हेतु उसे कर्पूर की आवश्यकता नहीं–

**करो किसी की दृष्टि को शीतल सदय कपूर,**
**इन आँखों में आप ही नीर भरा भरपूर।**

वर्षा ऋतु आने पर वह परम्परागत विरहणियों के समान कांम के वशीभूत हो सिसकियाँ नहीं भरती, अपितु वह उसके उज्जवल पक्ष को लेते हुए परहित कामना करती है–

**दरसो परसो घन, बरसो !**
**सरसो जीर्ण शीर्ण जगती के तुम नव यौवन बरसो।**
× × × × × × ×
**तरसूँ मुझ-सी मैं ही, सरसे-हरसे हँसे प्रकृति प्यारी,**
**सबको सुख होगा तो मेरी भी आयेगी वारी।**

**4. परदुःखकातरता**–ऊर्मिला के विरह-वर्णन की सर्वोपरि विशेषता है कि वह केवल अपनी विरह-व्यथा की परिधि में ही पीड़ित नहीं रहती, बल्कि उसकी वेदना ने उसे परदुःखकातर बना दिया है। उससे किसी की पीड़ा देखी नहीं जाती। उसकी संवेदना, सहानुभूति, स्नेह व करुणा अपने आसपास बसने वाले प्राणियों के प्रति उदारता से व्यक्त हुई है। कभी वह कोक से कहती है–

**कोक शोक मत कर तात,**
**कोकि, कष्ट में हूँ मैं भी तो सुन तू मेरी बात।**

यहाँ तक कि उसकी संवेदना मकड़ी के प्रति भी उमड़ी है। मोर को आनन्द से नृत्य करते देख कर वह अपनी सखी को उधर जा कर व्यवधान पैदा करने से रोकती है–

**न जा उधर हे सखी, वह शिखी सुखी हो नचे,**
**न संकुचित हो कहीं, मुदित लस्य-लीला रचे।**

परमार्थ में ही उसे जीवन की सार्थकता दिखाई देती है। उसे उन्हीं घनों का घोष अच्छा लगता है, जो धरा को हरा-भरा कर देते हैं। एक पीत पत्र को देख कर वह करुणा से भर आती है। उसकी परदुःखकातरता व परोपकार का अन्यतम परिचय निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है–

**तुम हो नीरस शरीर,**
**मुझ में हैं नयन नीर,**
**इसका उपयोग वीर,**
**मुझको बतलाओ।**
**लूँ मैं आँचल पसार, पीतपत्र आओ।**

**5. गार्हस्थिक परिवेश**–ऊर्मिला का विरह निवेदन गार्हस्थिक परिवेश के अन्तर्गत हुआ है। वह रघुकुल की समादृत वधू है, इसीलिए विरहावस्था में भी उसे पारिवारिक मर्यादा, शील, गौरव व गरिमा का पूरा ध्यान रहता है। वह परिवार में रहते हुए नित्य प्रति के कर्मों को करती है, यथा– खाना-पीना, स्नान-सन्ध्या आदि।

Scanned with ACE Scanner

परिवार के सदस्यों की सेवा-सुश्रूषा की भी उपेक्षा नहीं करती। यहाँ तक कि पालित पशु-पक्षियों का भी पूरा ध्यान रखती है। खाना बनाते समय उसे अपने प्रियतम का ध्यान हो आता है – तो वह उदास हो जाती है–

**बनाती रसोई, सभी को खिलाती,**
**इसी काम में आज मैं तृप्ति पाती।**
**रहा किंतु मेरे लिए एक रोना,**
**खिलाऊँ किसे मैं अलोना-सलोना?**

उसके लिए समय व्यतीत करना बड़ा कठिन है। कभी वह चित्रकला में मन लगाती है तो कभी शुक-सारिका से मन बहलाने का प्रयास करती है। वह तोते से पूछती है – **'कह विहग, कहाँ हैं आज आचार्य तेरे?'** तोता सदा की भाँति उत्तर देता है–**'मृगया में।'** यह सुनकर ऊर्मिला व्याकुल हो जाती है–

**सचमुच मृगया में? तो अहेरी नये वे,**
**यह हत हरिणी क्यों छोड़ यों ही गये वे?**

वास्तव में गुप्त जी ने बड़े मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना की है।

**6. आभ्यंतर स्वरूप**–संस्कृत के काव्यशास्त्र में विरह के अन्तर्गत दस अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है। ये दस अवस्थाएँ हैं – अभिलाषा, चिंता, स्मृति गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उमाद, व्याधि, जड़ता एवं मरण। विरह की दशा में न जाने कितनी अवस्थाएँ सामने आती हैं। उनकी संख्या दस निर्धारित करना तो सहज, स्वाभाविक नहीं, लेकिन गुप्त जी ने ऊर्मिला के विरह निवेदन के अन्तर्गत इन दशाओं का अंकन स्वाभाविक रूप से किया है–

**अभिलाषा**–वियोगावस्था में प्रिय से मिलने की इच्छा अत्यन्त उत्कट होती है। प्रिय की एक झलक पाने के लिए हृदय आकुल रहता है। ऊर्मिला की भी अभिलाषा है–

**यही आता है इस मन में**
**छोड़ धाम धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में।**
**बीच-बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,**
**जब वे निकल जायें तब लेटूँ उसी धूल में लोट।**

**चिन्ता**–प्रवासी प्रियतम के प्रति चिन्ता सहज व स्वाभाविक है। राम के साथ होने के कारण ऊर्मिला को प्रियतम के अमंगल की चिंता तो नहीं है, लेकिन वह इस विचार से चिन्तित है कि मेरी स्मृति कहीं उनकी तपस्या से विघ्न न डालें–

**मुझे भूल कर ही विभु वन में विचरें मेरे नाथ।**

**स्मृति**–संयोगावस्था के मधुर क्षणों का याद हो आना अत्यन्त सहज है। ऊर्मिला भी अतीत के सुखद क्षणों को याद करते हुए कहती है–

**"आलि, इसी वापी में हंस बने बार-बार हम विहरे,**
**सुधि कर उन छींटों की मेरे ये अंग आज भी सिहरे।"**

प्रिय की यादें विरह वेदना को बार-बार उद्दीप्त कर देती हैं।

**गुणकथन**–वियोगावस्था में प्रिय के स्वभाव व गुणों की याद करके पछताना गुणकथन के अन्तर्गत आता है। निम्नलिखित गीतांश में ऊर्मिला प्रियतम के चारु नयनों को याद कर रही है–

**"निरख सखि, ये खंजन आए।**
**फेरे मेरे रंजन ने नयन इधर मनभाये।"**

**उद्वेग**–इस अवस्था में सुखद वस्तुएँ भी कष्टप्रद प्रतीत होने लगती हैं। ऊर्मिला शारीरिक व मानसिक दोनों उद्वेगों से पीड़ित है–

**"मुझे फूल मत मारो।**
**मैं अबला, बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो।"**

**प्रलाप**–वियोगावस्था में चित्त के अत्यधिक व्याकुल होने से अटपटी अथवा असम्बद्ध बातें करना प्रलाप दशा कहलाती है। ऊर्मिला के ये शब्द–**'भय खाऊँ आँसू पियूँ, मन मारूँ, झखमार'** प्रलापावस्था के सूचक हैं।

Scanned with ACE Scanner

**उन्माद**–यह अर्द्ध-विक्षिप्त की सी-दशा है। इसमें प्रायः जड़-चेतन का ज्ञान नहीं रहता। नायिका कभी हँसने तो कभी रोने लगती है। इस दशा में ऊर्मिला को ऐसा लगता है कि मानो उसके प्रियतम वन से अपने भाई-भावज के बिना ही लौट आए हों–

**प्रभु कहाँ, कहाँ किंतु अग्रजा,**
**वह नहीं फिरे, क्या तुम्हीं फिरे,**
**हम गिरे अहो ! तो गिरे, गिरे।**

**व्याधि**–व्याधि दशा की सूचक वियोगिणी ऊर्मिला की ये पंक्तियाँ हैं–

**स्वजनि, पागल भी यदि हो सकूँ, कुशल तो अपना खो सकूँ।**
**शपथ है उपचार न कीजियो, अवधि की सुध ही तुम लीजियो।**

**जड़ता**–चतुर्थ सर्ग के अन्तर्गत विदाई के अवसर पर अत्यधिक विषाद के कारण ऊर्मिला धड़ाम से गिर पड़ती है। इसे जड़ता या मूर्च्छा की दशा कहा जा सकता है।

**मरण**–मरण की स्थिति का प्रायः वर्णन नहीं किया जाता, इसलिए कुछ आचार्य नौ अवस्थाओं का ही उल्लेख करते हैं। 'साकेत' के अन्तर्गत ऊर्मिला की भी ऐसी दशा का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता।

इस प्रकार गुप्त जी ने शास्त्रोक्त विरहावस्थाओं का सहज, स्वच्छन्द अंकन किया है, केवल काव्य रूढ़ियों का पालन नहीं किया।

**समीक्षा**–कतिपय विद्वान ऊर्मिला के विरह-वर्णन से संतुष्ट नहीं। विश्वम्भर मानव की आपत्ति है कि यह वर्णन कवि के प्राणों से नहीं निकला अर्थात् इसमें कवि का हृदय पूर्णतया तल्लीन नहीं हुआ। ऊर्मिला के विरहोद्‌गारों को देखते हुए यह आक्षेप अनुचित लगता है। दिनकर तथा कुछ अन्य आलोचकों ने ऊर्मिला की यौवन सुलभ आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति को उसके चरित्र के औदात्य के अनुकूल नहीं माना। दिनकर लिखते हैं – **'ऊर्मिला का व्यक्तित्व' मेरे चपल यौवन बाल, जैसे पर्दों में नहीं, प्रत्युत उन पर्दों में निखार पाता है, जिनमें विरह के साथ उसके त्याग का उल्लेख है। उदाहरणार्थ वे 'मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी, मैं बाँध न लूंगी, तुम्हें तजो भय भारी।'** पद का उल्लेख करते हैं।

इस सन्दर्भ में हमारा निवेदन है कि ऊर्मिला से देवी सदृश आचरण की अपेक्षा ही क्यों? वह प्रस्तर की प्रतिमा न थी, बल्कि एक मानवी थी, युवा थी, नवपरिणीता थी; उसकी भी कुछ उमंगे थीं, यौवन सुलभ आकांक्षाएँ थीं। अतः यदि वह 'मेरे चपल यौवन बाल', जैसे पद गाती है, तो इस पर खेद व्यक्त नहीं करना चाहिए। यौवन सुलभ इन उमंगों की पृष्ठभूमि में उसका त्याग व सतत जाग्रत कर्तव्य बोध अत्यन्त श्लाघनीय है। इसीलिए डॉ० कन्हैया लाल सहल, डॉ० नगेन्द्र तथा डॉ० धीरेन्द्र वर्मा आदि समीक्षकों ने इस विरह निवेदन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। डॉ० वर्मा ने तो इसे एक नन्हा-सा सूरसागर ही कह डाला है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ऊर्मिला का विरह वर्णन गुप्त जी ने बड़े मनोयोग से किया है। उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं एवं मनोदशाओं को बड़ी दक्षता से अंकित किया गया है। चरम यौवन में वियोगिनी हुई ऊर्मिला के त्याग का आदर्श बड़ा ऊँचा है। अपनी व्यथा को भुला वह सदैव प्रियतम की कर्तव्य साधना के विषय में चिन्तित रहती है। गुप्त जी प्राचीन संस्कृत काव्य व रीति काव्य से प्रभावित अवश्य हैं, परंतु विरह-व्यंजना में उन्होंने सहजता व स्वाभाविकता को बनाए रखा है। यहाँ तक कि अभिव्यंजना शिल्प को भी ऊर्मिला की मनोदशा के अनुरूप ढाला है। इस संदर्भ में डॉ० नगेन्द्र का आकलन अवलोकनीय है – **"इस प्रकार हम देखते हैं कि 'साकेत' के विरह-वर्णन की शैली अन्य ग्रंथों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है। वहाँ बदलते हुए छन्दों में नित्य-प्रति के जीवन से सम्बद्ध भावनाओं की इस प्रकार व्यंजना हुई है कि यह प्रतीत होता है कि मानो कोई विरहिणी, करवटें बदल कर सभी बातों को झींकती हुई रोदन कर रही हो।"** संक्षेप में इस विरह-व्यंजना के माध्यम से गुप्त जी ऊर्मिला के व्यक्तित्व के उज्ज्वल व उदात्त पक्ष को उजागर करने में सफल रहे हैं। रघुकुल की वियोगिनी वधू का विरह निवेदन उसके चरित्र के अनुरूप ही गरिमापूर्ण है। □

Scanned with ACE Scanner

**'कामायनी' के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**महाकाव्य की परिभाषा और स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए 'कामायनी' के महाकाव्यत्व की समीक्षा कीजिए।**

*अथवा*

**क्या कामायनी महाकाव्य की दृष्टि से एक सशक्त रचना है?**

*अथवा*

**'कामायनी सफल महाकाव्य है।' इस कथन के संदर्भ में अपनी अवधारणा का परिचय दीजिए।**

*अथवा*

**महाकाव्य की कसौटी पर 'कामायनी' का परीक्षण और मूल्यांकन कीजिए।**

*अथवा*

**'कामायनी' का काव्यरूप महाकाव्यात्मक है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति गीतात्मक है' – इस कथन पर विचार कीजिए।**

**उत्तर**–'कामायनी' के महाकाव्यत्व पर विचार करने से पूर्व यहाँ महाकाव्य की परिभाषा और स्वरूप पर विचार करना उपयोगी होगा। भारतीय आचार्य भामह के अनुसार सुदीर्घ कथानक वाला, महान् चरित्रों पर आश्रित, नाटकीय पंचसन्धियों से युक्त, उत्कृष्ट और अलंकृत शैली में लिखित तथा जीवन के विविध रूपों और कार्यों का वर्णन करने वाला, सर्गबद्ध, सुखान्त काव्य ही महाकाव्य है। आचार्य दण्डी के अनुसार महाकाव्य वह है, जिसका कथानक इतिहास या कथा से उद्भुत हो, जिसका नायक चतुर और उदात्त हो, जिसका उद्देश्य चतुर्वर्गफल की प्राप्ति हो, जो अलंकृत भावों और रसों से भरा हुआ हो और बड़े आकार का, सर्गबद्ध तथा पंचसन्धियों से युक्त काव्य हो। सुदीर्घ कथानक, उदात्त चरित्र-चित्रण, महान् उद्देश्य, रस-योजना, अलंकृत शैली, सर्गबद्धता, सुखान्तता आदि भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य के लक्षण हैं। **बाबू गुलाबराय** ने महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों का समाहार करते हुए महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है– **"महाकाव्य वह विषयप्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में, जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।"**

पाश्चात्य विचारक **अरस्तू** ने कथावस्तु की ऐतिहासिकता, विस्मयपूर्णता, दुखान्तता, सुसम्बद्धता, नाटकीयता के साथ ही पात्रों की उदात्तता, भाषा शैली की उच्चता और संदेश की उदात्तता पर बल दिया है। भारतीय तथा पाश्चात्य मतों के सामंजस्य के आधार पर विद्वानों ने कथानक, पात्र-योजना और चरित्र-चित्रण, रस-सृष्टि, उद्देश्य और भाषा-शैली की महाकाव्योचित गरिमा और स्तरीयता को रेखांकित किया है। डॉ० नगेन्द्र महाकाव्य को एक महान् और उदात्त रचना मानते हैं। अतः उन्होंने उदात्त कथानक, उदात्त चरित्र, उदात रस-योजना, उदात्त उद्देश्य या सन्देश तथा उदात्त भाषा-शैली को महाकाव्य के आधारभूत स्थायी लक्षण माना है।

Scanned with ACE Scanner

महाकाव्य की उपर्युक्त कसौटी के आधार पर **'कामायनी' के महाकाव्यत्व की परीक्षा** न्यायसंगत रूप में की जा सकती है।

**(क) उदात्त कथानक**—'कामायनी' के कथानक को औदात्त्य प्रदान करने वाले निम्नलिखित तत्व हैं—

1. 'कामायनी' का कथानक आदि, मध्य और अन्त में विराट् और उदात्त तत्वों से संयुक्त है। प्रारम्भ में देव-सृष्टि के विनाश की सूचक जल-प्लावन की ऐतिहासिक घटना है, मध्य में मनु और प्रजा के संघर्ष में आहत और मूर्च्छित मनु से श्रद्धा और कुमार के मिलन का मार्मिक प्रसंग है तथा अन्त में कैलास पर श्रद्धा, मनु, इड़ा, कुमार तथा प्रजा सहित शिव के साक्षात्कार और अखण्ड आनन्द का चित्रण है।
2. कथा हिमालय के उत्तुंग शिखर से चलकर सारस्वत प्रदेश से होती हुई कैलास पर समाप्त होती है। इस प्रकार पूरी कथा प्रकृति के विराट् रूपों की चित्रपटी पर अंकित है।
3. प्रकृति और मानव-प्रकृति के प्रसंगों में एक समानान्तरता के दर्शन होते हैं। जिस प्रकार देवताओं का विलास देव-सृष्टि को ले डूबा, उसी प्रकार जल-प्लावन भी विलास-वेग के समान उमड़ कर सारी पृथ्वी को डुबो रहा था—

   **'बढ़ने लगा विलास-वेग-सा वह अति भैरव जल संघात।'**

   इसी प्रकार, संघर्ष में मनु की पराजय बुद्धिवाद, विज्ञानवाद और अधिनायकतावाद की पराजय है। अन्त में कैलास पर कथा-पात्रों का आरोहण उत्थान और उदात्तीकरण का द्योतक है। अतः सारी कथा ने एक प्रतीकात्मकता से युक्त रूपक का रूप ले लिया है। प्रसाद के अनुसार— **"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है।"**
4. कथानक के माध्यम से मनोवैज्ञानिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और दार्शनिक अभिप्रायों की बड़ी ही मनोरम एवं प्रभावी अभिव्यक्ति सम्भव हो सकी है।

   कुल मिलाकर 'कामायनी' का कथानक घटनाप्रधान न होकर मनोवैज्ञानिक-दार्शनिक है।
5. कथानक में त्रिपुर, ताण्डव नृत्य, डमरू-निनाद, शिव आदि अलौकिक प्रसंगों के योग से एक विस्मय, वैराट्य और औदात्त्य का समावेश हो गया है।

डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, **" 'कामायनी' परम्परागत महाकाव्य अर्थात् ऐहिक जीवन-प्रधान महाकाव्य की कोटि में नहीं आता। वह ऐहिक जीवन का महाकाव्य नहीं है। मानव चेतना का महाकाव्य है।"**

**(ख) उदात्त चरित्र-चित्रण**—'कामायनी' में पात्रों के चयन में भारी सूझ-बूझ और कौशल का परिचय दिया गया है। प्रमुख पात्रों के साथ गौण पात्रों की योजना से चरित्र-चित्रण को वैविध्य प्रदान किया गया है। पात्रों के चरित्र-चित्रण को औदात्य प्रदान करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं :—

1. 'कामायनी' के प्रायः सभी पात्र प्रतीकात्मक होने के कारण अपना असाधारण व्यक्तित्व रखते हैं। मनु मन की दुर्बलता-सबलता के प्रतीक हैं। वे अनेक दुर्बलताओं का परिचय देते हुए भी अन्त में अपनी साधना और श्रद्धा के सहयोग से उत्थान और उत्कर्ष की आनन्दमयी दिव्य आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मनु का चरित्र विकासशील है। वे अपने चरित्र के माध्यम से मानव के विकास का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। वे कुमति से सुमति की ओर अग्रसर होते हैं। उनकी जीवन-यात्रा विकृति से संस्कृति की ओर अग्रसर है। श्रद्धा इस महाकाव्य की नायिका है। वह समुन्नत चेतना और रागात्मिका वृत्ति या हृदय की प्रतीक है। उसका प्रेम समर्पणमय और कल्याणमय है। वह सुमति प्रेरित हृदय के कारण श्रेष्ठ पत्नी और महिमामयी माता है। इड़ा व्यावसायिक बुद्धि की प्रतीक है, जो मनु को भौतिक मायाजाल में भटकाती है। प्रसाद जी के अनुसार, **"यह इड़ा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने में सहायक होता है।"** इस प्रतीकात्मकता के कारण ये पात्र मानव-मन की गतिविधियों की सनातन गाथा को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसीलिए 'कामायनी' की कथा मानवता के विकास की अमर गौरव-गाथा बन गई है।

Scanned with ACE Scanner

2. लौकिक पात्रों के साथ कुछ अलौकिक पात्र भी हैं तथा कुछ लौकिक पात्रों में ही अलौकिक तत्वों का समावेश किया गया है। ऐसा करने से पात्रों और प्रसंगों में विलक्षणता आ गई है। शिव अलौकिक पात्र हैं। काम का प्रसंग भी लौकिक-अलौकिक तत्वों के मिश्रण से निर्मित है। संघर्ष सर्ग में रुद्र का प्रकोप अत्याचारी मनु को झेलना पड़ता है। रहस्य सर्ग में श्रद्धा अपनी दिव्य मुस्कान के प्रभाव से ज्ञान, इच्छा, क्रिया के त्रिकोण को मिलाकर एकान्वित कर देती है। लौकिकता-अलौकिकता के इस सम्मिश्रण से पात्रों में नई दीप्ति और भास्वरता आ गई है।
3. 'काम', 'लज्जा' सरीखे सूक्ष्म मनोभावों को भी कवि ने पात्र-रूप में प्रस्तुत करके अपनी पात्र-योजना को सफलता की पराकाष्ठा तक पहुँचाया है। काम इड़ा सर्ग में अपनी पुत्री श्रद्धा के पक्ष में मनु को मार्मिक संदेश देता है। इसी प्रकार समस्त् जाति को शालीनता की शिक्षा देने वाली 'लज्जा' का शील-सौन्दर्य भी अनूठा है। चिन्ता, आशा, ईर्ष्या आदि मनोभावों को पात्र तो नहीं बनाया, किन्तु उनका मानवीकरण करके उन्हें भी मानवीय रूप में प्रस्तुत किया है। चिन्ता कवि के लिए **"अभाव की चपल बालिका"** है, आशा उषा के रूप में जयलक्ष्मी-सी उदित होती है। इस सूक्ष्म पात्र-योजना से महाकाव्य के स्तर में निश्चय ही अनूठी अभिवृद्धि हुई है।

'कामायनी' की वैविध्यपूर्ण, प्रतीकात्मक, अलौकिकता-आभासित पात्र-योजना कामायनी के महाकाव्यत्व के गौरव के अनुरूप है।

**(ग) उदात्त रस-योजना**—महाकाव्य के विस्तृत कलेवर में प्रायः सभी नौ रसों के समावेश का अवकाश रहता है। फिर भी काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के लिए तीन रसों— शृंगार, वीर और शान्त को विशेष आवश्यक माना है। इन तीनों में से एक रस काव्यशास्त्रियों के अनुसार अंगीरस होना चाहिए और शेष रस अंगरस के रूप में जहाँ-तहाँ अपना उद्रेक दर्शाकर अंगीरस की पुष्टि में नियोजित होने चाहिए। **डॉ० नगेन्द्र** ने 'कामायनी' महाकाव्य में अंगीरस पर विचार करते हुए शृंगार, वीर, शान्त में से किसी को भी 'कामायनी' का अंगीरस नहीं माना, वरन् काव्यशास्त्र की सीमा को लाँघते हुए एक नए रस 'आत्मरस' अथवा 'महारस' या 'आनन्द रस' की उद्भावना कर डाली है। अब तक ऐसे किसी रस की किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन रसशास्त्री ने चर्चा तक नहीं की। किसी रस को 'महारस' कहना कहाँ तक ठीक है ?

वास्तविकता यह है कि 'कामायनी' का अंगीरस कामायनी अर्थात् श्रद्धा की काम-भावना या रति पर ही केन्द्रित है। 'कामायनी' के एक सर्ग का नाम 'काम' है, जो एक पात्र के रूप में मनु को श्रद्धा की उपेक्षा के लिए फटकारता भी है। 'कामायनी' में विरह-मिलन के प्रसंग भी मार्मिक हैं। काम-भावना 'कामायनी' काव्य के प्रारम्भ से अन्त तक व्याप्त है। काम के सही मार्ग से भ्रष्ट होने के कारण मनु विडम्बित होता और दुःख झेलता है। काम के सन्मार्ग पर चलने वाली श्रद्धा न केवल अपना, अपने पुत्र कुमार का, वरन् अपने पति मनु का भी उद्धार करती है और उसे साधना-पथ पर ले जाकर सुमति-सम्पन्न और समरस बनाकर आनन्द का भागी बनाती है। 'कामायनी' अपने सन्तुलित काम-मार्ग से अपने परिवार तथा सारस्वत प्रदेश की प्रजा का भी उद्धार करती है। अतः शृंगार ही 'कामायनी' काव्य का 'अंगीरस' है, जो इस नायिकाप्रधान काव्य के स्वरूप के सर्वथा अनुरूप है। मनु के निर्वेद से शान्त रस की निष्पत्ति होती है तथा उसके संघर्ष और युद्ध से वीर रस की, किन्तु ये दोनों ही प्रासंगिक हैं। इनकी व्याप्ति काव्य के प्रारम्भ से अन्त तक नहीं है। 'कामायनी' में बीच-बीच में कुमार के प्रसंगों में वात्सल्य रस का परिपाक हुआ है। पशु-बलि के प्रसंगों में पशु के प्रति करुणा जगाकर करुण रस का समावेश किया गया है। अन्त के सर्गों में अद्भुत रस और शान्त रस का समावेश है।

कुल मिलाकर 'कामायनी' में शृंगार रस की ही आद्योपान्त व्याप्ति मिलती है। वीर, शान्त, वात्सल्य, करुण उसी अंगीरस के अंग हैं। प्रसाद जी मूलतः सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं। यह प्रेम ही 'प्रेम-कला' बन कर कामायनी में शृंगार रस के रूप में फलित हुआ है। पूरे काव्य में काम-तत्व की ही उदात्त व्याख्या है।

**(घ) उदात्त उद्देश्य या सन्देश**—'कामायनी' महाकाव्य के अन्य घटकों की भाँति इसका उद्देश्य या सन्देश भी महान् है। इसका प्रमुखतम उद्देश्य है—आधुनिक बुद्धिवादी, व्यक्तिवादी, भौतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक सभ्यता के संकटों को दर्शाना और मानवता को मूल्य-केन्द्रित, उदात्त, आस्तिक, श्रद्धामय एवं सात्त्विक जीवन जीने की

Scanned with ACE Scanner

प्रेरणा प्रदान करना। व्यावसायिक बुद्धि इड़ा के चंगुल से मुक्त होकर तथा श्रद्धा से संयुक्त होकर ही मनु कैलास पर शिव का साक्षात्कार करके समरसता और अखण्ड आनन्द की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार बुद्धिवाद से उत्पन्न विषमता और दुःख-द्वन्द्व पर समरसता और आनन्द की विजय दर्शाना ही 'कामायनी' का मूल उद्देश्य है। मनु अपनी विकृतियों से विमुख होकर सुमति और संस्कृति की दिशा में अग्रसर होते हैं। इस प्रकार 'कामायनी' का उद्देश्य विकृति पर संस्कृति की विजय दर्शाना भी है। इसी महान् उद्देश्य के साथ अन्य गौण उद्देश्य भी जुड़े हैं, यथा– हिंसा पर अहिंसा की, भोगवाद के ऊपर आत्मसंयम और मर्यादा की, ईर्ष्या-द्वेष के ऊपर प्रेम की, वैराग्य के ऊपर प्रवृत्ति की और तानाशाही के ऊपर प्रजातन्त्र की विजय दर्शाना। 'कामायनी' एक शक्ति-काव्य है। श्रद्धा का सन्देश मूलतः शक्ति-सन्देश ही है–

**और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान।**
**शक्तिशाली हो विजयी बनो विश्व में गूँज रहा जयगान।।**

यह शक्ति तभी सम्भव है जब मनुष्य की इच्छा, ज्ञान और क्रिया में अन्विति हो। श्रद्धा के सहयोग से मनु के व्यक्तित्व में ज्ञान, क्रिया और इच्छा में अन्विति और समरसता का संचार होता है–

**स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।**
**दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।।**

मानसिक सन्तुलन और समन्वय की भावना से समरसता तथा आनन्द का उदय होता है–

**समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।**
**चेतनता एक बिलसती आनन्द अखण्ड घना था।।**

'कामायनी' का यह सन्देश महान्, उदात्त और सनातन है। यह मानव-कल्याण की विराट् चेतना पर आधारित है।

(ङ) **उदात्त भाषा-शैली**–छायावादी भाषा-शैली का चरमोत्कर्ष प्रसाद जी की कविता में देखने को मिलता है। उन्होंने चिन्ता को **'अरी विश्व-वन की व्याली'** तथा **'ओ अभाव की चपल बालिके'** कह कर साकार किया है। श्रद्धा को 'वसन्त का दूत' कहा गया है तथा नील परिधान से झाँकते हुए उसके अंगों को **'खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच गुलाबी रंग'** बतलाया गया है। उन्होंने बुद्धि के तर्कों से सिद्ध किए जाने वाले छद्म सत्य को **'मेधा के क्रीड़ा-पंजर का पाला हुआ सुआ'** कहकर अपनी शैलीगत सूक्ष्मता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। कोमल भावों की बारीकी से नक्काशी करने की कला में तो प्रसाद परम निष्णात हैं ही, पौरुष या कठोर प्रसंगों के चित्रण में भी उनको आशातीत सफलता मिली है। **'सघन गगन में भीम प्रकम्पन, झंझा के चलते झटके'** के माध्यम से उन्होंने प्रलयकालीन झंझावात को पूरी उग्रता के साथ चित्रित किया है। **"निर्जनता की उखड़ी साँस"** में सूनेपन का मानवीकरण शिल्प का उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करता है।

'कामायनी' में नाटकीयता में कविता और कविता में नाटकीयता का मधुर सामंजस्य घटित हुआ है। कई सर्ग– श्रद्धा, काम, लज्जा, इड़ा आदि संवादात्मक शैली में लिखे गए हैं। इसी प्रकार, मुक्तक गीत-काव्य और प्रबन्धात्मकता का भी 'कामायनी' में मधुर समन्वय दिखाई पड़ता है। इड़ा सर्ग में पद-शैली का प्रयोग किया गया है अर्थात् पूरे सर्ग में छोटे-छोटे गीतों की सुन्दर, सरस योजना की गई है। 'निर्वेद' सर्ग में श्रद्धा का गीत **'तुमुल कोलाहल कलह में कह हृदय की बात रे मन'** निश्चय ही गीत-काव्य की दृष्टि से अनुपम है। 'चिन्ता' सर्ग में भाषा-शैली प्रसंग के अनुरूप प्रचण्ड रूप में प्रकट हुई है तो 'लज्जा' सर्ग में भाषा को बारीकी से तराशा गया है। कुछ सर्गों में लम्बे विलम्बित गति वाले छन्द प्रयुक्त किए गए हैं, तो कुछ में छोटे क्षिप्र गति वाले छन्दों का प्रयोग किया गया है। कालिदास, तुलसीदास की भाँति **उपमा** प्रसाद जी का भी परम प्रिय अलंकार है। **रूपक** के प्रयोगों में भी प्रसाद जी को आशातीत सफलता मिली है। बिम्ब-विधान, प्रतीक-योजना, मानवीकरण आदि की दृष्टि से प्रसाद जी की भाषा-शैली छायावादी भाषा का भव्यतम रूप प्रस्तुत करती है। **डॉ० नगेन्द्र** के अनुसार, **"समग्रतः 'कामायनी' की शैली निश्चय ही भव्य है।**

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में 'कामायनी' आधुनिक हिन्दी कविता का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें उदात्त कथानक, उदात्त चरित्र-चित्रण, उदात्त रस-योजना,उदात्त सन्देश और उदात्त भाषा-शैली

Scanned with ACE Scanner

का अत्यन्त सफल एवं प्रभावी संयोजन हुआ है। यह सही है कि अपनी शैली की सूक्ष्मता के कारण इसकी पठनीयता या सम्प्रेषणीयता सुशिक्षित काव्य-मर्मज्ञों तक ही सीमित रहेगी। यह रामचरितमानस की भाँति एक जन-काव्य नहीं बन सकता। किन्तु जहाँ तक काव्यगत गुणवत्ता का प्रश्न है, 'कामायनी' निश्चय ही एक उदात्त एवं श्रेष्ठ महाकाव्य है। यह ठीक है कि कामायनी में महाकाव्य के कुछ परम्परागत लक्षणों यथा—प्रारम्भ में मंगलाचरण, सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन आदि का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी 'कामायनी' एक उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य है। 'कामायनी' में युग-जीवन की समस्याओं के साथ ही युग-युग के जीवन की सनातन समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। अतः यह एक अमर महाकाव्य है, जो युग-युग तक भौतिकता के दुःख-द्वन्द्वों में फँसी मानवता को सुमति, श्रद्धा, सन्तुलन, समरसता का मार्ग दर्शाता रहेगा। ❑

## 2. रूपक तत्व

**? कामायनी के रूपक तत्व की समीक्षा कीजिए।** (2003, 2007, 2010, 2012)

*अथवा*

**"'कामायनी' की कथा में प्रारम्भ से अन्त तक रूपक का निर्वाह हुआ है।" उक्त कथन के आलोक में कामायनी में निहित रूपक-तत्व की विवेचना कीजिए।**

*अथवा*

**कामायनी की प्रतीक पद्धति की सोदाहरण विवेचना करें।**

**उत्तर**—'आरोपात् रूपकम्' के अनुसार 'प्रस्तुत' पर 'अप्रस्तुत' का आरोप ही रूपक है। यह आरोप शब्द के ऊपर शब्द का भी हो सकता है, यथा— **मुख-चन्द्र** और शब्द के ऊपर नए अर्थ का भी, यथा **सुधा-शान्ति**। किसी काव्य के पूरे स्थूल कथानक पर सूक्ष्म सांकेतिक अर्थों का आरोपण भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में सामान्य और स्थूल लौकिक कथानक किसी असाधारण और सूक्ष्म अर्थ की अभिव्यक्ति करने लगता है। डॉ० नगेन्द्र **"रूपक से अभिप्राय एक ऐसी द्विअर्थक कथा से लेते हैं जिसमें उससे ध्वनित किसी सैद्धान्तिक अप्रस्तुतार्थ अथवा अन्यार्थ का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता है।"** संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वह काव्य ही रूपक-काव्य कहलाने का अधिकारी है, जिसके पात्रों और प्रसंगों पर किन्हीं ऐसे सूक्ष्म अर्थों का आरोप किया जाता है, जो काव्य के पात्रों और प्रसंगों के सांकेतिक या प्रतीकात्मक स्वरूप के कारण सहज ही अभिव्यंजित होते चलते हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक काव्य रूपक-काव्य नहीं हो सकता। रूपक-तत्व कथानक में संयोजित पात्रों और प्रसंगों के सांकेतिक स्वरूप पर निर्भर करता है, जिसके कारण वे अपने स्थूल अर्थों के साथ ही सूक्ष्म अर्थों की व्यंजना करने में भी सफल सिद्ध होते हैं। रूपक-काव्य वह है, जो अपने पात्रों और कथा-प्रसंगों के व्यंजक या प्रतीकात्मक स्वरूप के कारण स्थूल वर्णन से हटकर नई सूक्ष्म अर्थ-शृंखला की अभिव्यक्ति करता है। रूपक-काव्य में सामान्य लौकिक प्रस्तुत कथा के माध्यम से दूसरी सूक्ष्म, असाधारण एवं अप्रस्तुत सांकेतिक भाव-पद्धति व्यक्त होती चलती है। इस दुहरी अर्थवत्ता से निश्चय ही काव्य की भाव-धारा और प्रभाव में अभिवृद्धि होती है। रूपक-काव्य की रचना साधारण प्रतिभा का वस्तुनिष्ठ कवि नहीं कर सकता। इसके लिए भावना, कल्पना और चिन्तन के समन्वित उत्कर्ष से युक्त ऐसे प्रतिभाशाली कवि की आवश्यकता होती है, जो स्थूल पात्रों और प्रसंगों को उनके अभिधात्मक अर्थों से ऊपर सूक्ष्म सांकेतिक अर्थों तक पहुँचा सके। प्रसाद जी ऐसे ही महान् प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी कामायनी में स्थूल के ऊपर सूक्ष्म की विजय का उद्घोष सुनाई पड़ता है। 'कामायनी' के रूपक तत्वों का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के संदर्भ में किया जा सकता है।

**1. स्वयं प्रसाद द्वारा कामायनी में रूपक-तत्व की स्वीकृति**—कामायनी रूपक-तत्व से युक्त एक महान् एवं सफल रूपक-काव्य है। 'कामायनी' का कथानक ऐतिहासिक-पौराणिक है। इस कथानक के पात्र और प्रसंग अपने स्थूल अर्थों के साथ सांकेतिक या प्रतीकात्मक अर्थों की भी व्यंजना करने में समर्थ हैं। स्वयं महाकवि प्रसाद जी ने 'कामायनी' के कथानक की इस दुहरी अर्थवत्ता को ध्यान में रखकर इसे रूपक-काव्य कहा है। 'कामायनी' के 'आमुख' में प्रसाद जी लिखते हैं— **"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का**

Scanned with ACE Scanner

**भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु-श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"**

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि 'कामायनी' की रचना करते समय स्वयं कवि को अपने कथानक के पात्रों और प्रसंगों की दुहरी अर्थवत्ता का बोध था। तभी को कविवर प्रसाद ने इतिहास में कल्पना का सामंजस्य करते हुए अपने पात्रों और उनसे जुड़े प्रसंगों को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि उनके साधारण अभिधात्मक अर्थों के साथ ही उनके प्रतीकात्मक अर्थ भी उभरते चलें और पूरे काव्य के कथानक से सामान्य इतिवृत्त के साथ ही सूक्ष्म अर्थ-शृंखला भी व्यक्त होती चले।

**2. कामायनी के पात्र और रूपक-तत्व**—'कामायनी' के प्रायः सभी पात्र रूपक-तत्व से युक्त हैं। वे सभी अपने व्यक्तित्व की सांकेतिकता के कारण दुहरे अर्थ देते हैं। 'कामायनी' के नायक मनु केन्द्रीय पात्र हैं। उनका नाम **'मनु'** अपनी ध्वनि-व्यवस्था के कारण 'मन' के उच्चारण के बहुत निकट है। फिर मनु का व्यवहार भी मन के व्यवहार से बहुत मेल खाता है। भारतीय दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान में मन को संकल्प-विकल्प में उलझा रहने वाला बतलाया गया है। मनु भी मन की ही असन्तुलित और संकल्प-विकल्पात्मक स्थिति के प्रतीक हैं। कभी वे श्रद्धा की ओर उन्मुख होते हैं तो कभी उसे छोड़कर इड़ा के प्रति आकर्षित होते हैं और फिर उसे भी त्याग कर पुनः श्रद्धा को अपनाते हैं। मनु के मन को संकल्प-विकल्प की दुविधा से मुक्ति तब मिलती है, जब श्रद्धा उनको नटराज शिव के दर्शन कराती है। मनु के मन में श्रद्धा और बुद्धि का समन्वय हो जाता है। इसी सन्तुलन से समरसता और आनन्द की उपलब्धि होती है। कामायनी में **श्रद्धा** हृदय अथवा राग-तत्व की प्रतीक है। प्रसाद जी ने श्रद्धा को **"हृदय की अनुकृति बाह्य उदार"** कह कर उसके हार्दिक या रागात्मक स्वरूप को ही रेखांकित किया है। श्रद्धा हृदय के सभी उदात्त भावों— दया, माया, ममता, मधुरता, विश्वास आदि से युक्त है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा में निहित रूपक-तत्व का सम्यक् उद्‌घाटन करते हुए लिखा है— **"रूपक की भावना के अनुसार श्रद्धा विश्वास-समन्वित रागात्मिका वृत्ति है और इड़ा व्यावसायात्मिका बुद्धि। कवि ने श्रद्धा को मृदुता, प्रेम और करुणा का प्रवर्तन करने वाली और सच्चे आनन्द तक पहुँचाने वाली चित्रित किया है।"** श्रद्धा अपने हृदय की सम्पूर्ण भाव-राशि को मनु को समर्पित करती हुई कहती है—

**दया, माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो अगाध विश्वास।**
**हमारा हृदय रत्न-निधि स्वच्छ, तुम्हारे लिए खुला है पास।।**

कामायनी में निरूपित प्रत्यभिज्ञा दर्शन या समरसतावाद में मनु और श्रद्धा के अर्थ उपयुक्त भावनात्मक अर्थों से भी ऊपर उठ जाते हैं। नटराज शिव के साक्षात्कार से तो मनु भी शिव-रूप हो जाते हैं और श्रद्धा शक्तिरूपा हो जाती है—

**चिर-मिलित प्रकृति से पुलकित,**
**वह चेतन पुरुष पुरातन।**
**निज शक्ति-तरंगायित था,**
**आनन्द-अम्बु-निधि शोभन।।**

'कामायनी' महाकाव्य का तीसरा प्रमुख पात्र है **इड़ा**। प्रसाद जी के अनुसार इड़ा देवताओं की स्वसा अर्थात् बहन थी। इड़ा बुद्धि की प्रतीक है। श्रद्धाहीन असंयत बुद्धि से प्रेरित मनु ही भौतिकवाद, साम्राज्यवाद और अधिनायकवाद की उच्छृंखल प्रवृत्तियों के दास बन जाते हैं। प्रसाद जी के अनुसार, यह इड़ा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने में सहायक होता है। फिर बुद्धिवाद के विकास में अधिक सुख की खोज में, दुःख मिलना स्वाभाविक है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि श्रद्धा और इड़ा मनु अर्थात् मन के ही हृदय-पक्ष और बुद्धि-पक्ष की प्रतीक हैं। कोरी व्यावसायिक बुद्धि मनुष्य के मन को स्वार्थी, भोगवादी और अधिकार-लोलुप बना देती है। हृदय और बुद्धि के सन्तुलित सामंजस्य से ही मानवता का विकास सम्भव है। इसी सामंजस्य की प्राप्ति के लिए श्रद्धा इड़ा के अनुरोध पर अपने पुत्र कुमार (मानव) को इड़ा को सौंप देती है। श्रद्धा-पुत्र **कुमार** मानव का प्रतीक

Scanned with ACE Scanner

है। कामायनी में मानव के विकास के लिए रागात्मिका श्रद्धा के साथ तर्कमई बुद्धि (इड़ा) के सामंजस्य का सिद्धान्त निरूपित हुआ है। श्रद्धा और बुद्धि (इड़ा) के सामंजस्य से मनुष्य सत्कर्मों में प्रवृत्त होता है तथा सामाजिक सन्तुलन और समसरता का प्रसार कर सकता है। श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को लक्ष्य करके इसी हृदय-बुद्धि के सामंजस्य के मंगलमय परिणाम पर प्रकाश डालती हुई कहती है–

**"यह तर्कमयी, तू श्रद्धामय,**
**तू मननशील कर कर्म अभय,**
**इसका तू सब सन्ताप निचय,**
**हर ले, हो मानव भाग्य उदय,**
**सबकी समरसता कर प्रचार,**
**मेरे सुत, सुन माँ की पुकार।"**

**आकुलि-किलात** आसुरी अथवा तामसी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। श्रद्धा का पालित पशु निरीह शोषित प्राणी का प्रतीक है, जिसका स्वार्थी हिंसक मनु और आकुलि-किलात के द्वारा यज्ञ-विधान के बहाने वध किया जाता है। **देव** असंयत भोगवाद के प्रतीक हैं।

**3. कामायनी की घटनाएँ और रूपक-तत्व**–कामायनी की सर्वप्रमुख घटना है **जल-प्लावन**। कवि को देव-सृष्टि में रहने वाले देवों के बढ़ते हुए विलास-वेग में जल-प्लावन का ही दृश्य दिखाई देता है–**'बढ़ने लगा विलास-वेग-सा वह अति भैरव जल-संघात'**।

विलास-वेग और जल-प्लावन में कविवर प्रसाद ने गम्भीर साम्य देखा है। इस वासना-वेग का संगम प्रलय-जलधि में हुआ है–

**"भरी वासना-सरिता का वह कैसा था मदमत्त प्रवाह,**
**प्रलय-जलधि में संगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।"**

इस प्रकार जल-प्लावन वासना-वेग के सदृश भी है और उसका दुष्परिणाम भी। जल-प्लावन यहाँ प्राकृतिक प्रकोप का प्रतीक है। जो भी अमर्यादित होकर अति भोगवाद में पड़ता है, प्रकृति उसे कभी क्षमा नहीं करती। अतः प्रकृति भी कुपित होकर मर्यादा का अतिक्रमण करती है और असंयत भोगवादी को दण्डित करने से नहीं चूकती–

**"उदधि डुबा कर अखिल धरा को बस मर्यादाहीन हुआ।"**

इस प्रकार जल-प्लावन की घटना देवों के असंयत भोगवाद के प्रति प्रकृति का प्रबल प्रकोप है। प्रकृति के अन्दर एक न्याय-चेतना विद्यमान है, जो मर्यादावादी को पुरस्कृत और मर्यादाहीन को दण्डित करती है। जल-प्लावन प्रकृति के आक्रोश की अभिव्यक्ति है।

**पशु-बलि** की घटना भी सांकेतिक है। यह तामसी वृत्ति के विरुद्ध श्रद्धा अथवा सात्त्विक वृत्ति के विद्रोह की प्रतीक है। यह देव-सृष्टि में पूर्व प्रचलित कर्म-काण्ड या यज्ञ-विधान के नाम पर प्रचलित की जाने वाली हिंसा के विरुद्ध अहिंसा की भावना का विद्रोह है। आकुलि-किलात नामक आसुरी शक्तियाँ मनु को बलि-कर्म के लिए उकसाती हैं। फलतः मनु श्रद्धा के पालित मृग की बलि दे देते हैं। मनु की देव-सृष्टि से चली आ रही ऐन्द्रिय लिप्सा और भोग-लालसा ही उससे यह कुकृत्य कराती है। श्रद्धा का विक्षोभ अहिंसा, ममता आदि वृत्तियों का हिंसा के विरुद्ध विद्रोह है, जिस पर बौद्ध धर्म और गांधी के अहिंसा-आन्दोलन का प्रभाव है।

सारस्वत प्रदेश में असंयत अधिकार-भोगी मनु और प्रजा के मध्य घटित संघर्ष की घटना भी रूपकात्मक है। यह शोषक और शोषित के मध्य के संघर्ष या द्वन्द्व की द्योतक है। इस पर प्रसाद- कालीन साम्यवादी या प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रभाव है। इसमें अधिनायकतावादी शासन-पद्धति का विरोध भी निहित है।

**4. कामायनी के स्थलों में रूपक तत्व**–कामायनी की कथा हिमालय की **एक ऊँची चोटी** से प्रारम्भ होती है और दूसरी चोटी **कैलास** पर समाप्त होती है। यह मनु की मानसिक स्थिति का ही अन्तर है, जिसके कारण प्रथम शिखर चिन्ता मनोभाव से जुड़ा है और कैलास आनन्द से। मनोभाव के कारण दोनों शिखरों का अर्थ भिन्न-भिन्न लगता है। जब मनुष्य अपने दम्भ, अहंकार, भोग का दण्ड पाता है तो लुटा-लुटा अनुभव करता है।

Scanned with ACE Scanner

करता है और वही मनुष्य जब श्रद्धा-बुद्धि-समन्वित होकर उदात्त मनोदशा को ग्रहण करता है तो असीम आनन्द का भागी बनता है।

**सारस्वत प्रदेश** भौतिक, वैज्ञानिक प्रगति का प्रतीक है। इस क्षेत्र की वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य को यन्त्रवत् जड़ बना दिया है। यह औद्योगिक प्रगति सामाजिक-आर्थिक विषमता की जन्मदात्री है। इसमें पूँजीपति का ही एकाधिपत्य होता है, मजदूर जनता पिसती है। यहाँ मनु पूँजीपति, सामन्त और शोषक शासक का प्रतीक है तथा प्रजा शोषित, अधिकारहीन मजदूर वर्ग की द्योतक है।

**त्रिपुर** या त्रिकोण इच्छा, ज्ञान, क्रिया का प्रतीक है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया में सामंजस्य न होने से ही मनुष्य का जीवन दुःखद और असफल बनता है–

**ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।**
**एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।।**

**कैलास** (कैलाश) समरसता और आनन्द का प्रतीक है। जब मनुष्य श्रद्धासमन्वित बुद्धि और बुद्धिसमन्वित श्रद्धा से युक्त होकर अपने मन के उदात्त और उच्च चिन्तन-शिखर पर अवस्थित होता है तो वह सब भेद-भावों और विषमताओं से ऊपर उठकर समरसता की स्थिति को प्राप्त होता है, जिसका परिणाम है अखण्ड आनन्द–

**समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।**
**चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।।**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कामायनी में रूपक तत्व की सुन्दर और सफल संयोजना हुई है। डॉ० नगेन्द्र ने कामायनी में निहित रूपक-तत्व को स्वीकृति प्रदान करते हुए लिखा है– **"कामायनी के पात्रों का प्रतीकमय, सांकेतिक व्यक्तित्व तथा उसकी घटनाओं का श्लेष-गर्भित गूढ़ार्थ-दोनों ही इस मत की पुष्टि करते हैं। अतः कामायनी में रूपक तत्व की स्थिति के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता।"** डॉ० शिवदान सिंह चौहान के अनुसार– **"कामायनी की कथा एक पौराणिक वृत्त पर आधारित है, किन्तु यह वृत्त तो एक रूपक है, जिसके माध्यम से प्रसाद जी ने मनुष्य के बौद्धिक और भावनात्मक विकास और आधुनिक जीवन के आन्तरिक वैषम्य की वास्तविकता को ही चित्रमयी भाषा में प्रतिबिम्बित करने का विराट् आयोजन किया है।"** डॉ० फतह सिंह ने कामायनी को रूपक-काव्य मानते हुए लिखा है– **"कामायनी में भौतिक और आध्यात्मिक, लौकिक और अलौकिक का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक कथानक में रूपक का सम्मिश्रण कर लिया गया है।"** डॉ० नामवर सिंह ने कामायनी में निहित रूपक-तत्व की सहवर्ती प्रतीक-योजना की महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखा है– "प्रसाद ने अपने युग की वास्तविकता को इतने व्यापक सामाजिक परिवेश में तथा भावना के गहरे स्तरों के साथ चित्रित किया है कि इन प्रतीकों में युग-युग को रसमग्न और प्रेरित करने की क्षमता आ गई है।" वास्तव में, प्रतीक-योजना कामायनी में निहित रूपक-योजना का ही अभिन्न अंग है। इसे अलग करके नहीं देखा जा सकता।

❐

## 3. समरसता और आनन्दवाद

**"कामायनी समरसता का संदेश देती है"–इस कथन को स्पष्ट कीजिए।**

*अथवा*

**'कामायनी' में निरूपित जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालते हुए समरसता और आनन्द के स्वरूप पर विचार कीजिए।**

*अथवा*

**'कामायनी' समरसता का प्रतिपादन करती है।–समीक्षा कीजिए।**

*अथवा*

**कामायनी में समरसता और आनंदवाद के संदेश को स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर–प्रसाद जी कोरे भावुक और कल्पनाशील कवि ही नहीं थे, वे एक प्रतिभाशाली चिन्तक, विचारक और दार्शनिक भी थे। इसके साथ ही वे एक गम्भीर अध्येता था। उन्होंने उपनिषदों, गीता, शैव दर्शन आदि

Scanned with ACE Scanner

का गम्भीर अध्ययन किया था। उन्होंने दर्शन या चिन्तन को कोरे शुष्क सैद्धान्तिक रूप में प्रस्तुत न करके उसे भावना और कल्पना के साँचे में ढालकर कर प्रस्तुत किया है। अतः उनका चिन्तन काव्यात्मक और रसात्मक होने के कारण सहज ग्राह्य बन गया है। प्रसाद जी का दर्शन समरसतावाद और आनन्दवाद का प्रतिपादन करने वाले शैव दर्शन पर आधारित है।

यहाँ 'कामायनी' में प्रतिपादित समरसता और आनन्दवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालने से पूर्व **प्रसादकालीन परिस्थितियों पर प्रकाश** डालना होगा। प्रसाद के युग में भारत परतन्त्रता की पीड़ा भोग रहा था। भारत का पराधीन नागरिक विषमता की व्यथा से ग्रस्त था। पाश्चात्य वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टि ने मनुष्य की लालसाओं को भड़का दिया था। उस युग में अधिनायकवादी, सामन्ती और पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही थीं। जनता का शोषण और उत्पीड़न हो रहा था। **'कामायनी'** का मनु अधिनायकवादी असंयत महत्त्वकांक्षा, सत्ता-सुख और भोगवाद से ग्रस्त होकर जनता का जो शोषण करता है, उसमें प्रसाद-युग के सामन्ती और शासकीय शोषण की प्रतिच्छाया देखने को मिलती है। जनता द्वारा मनु के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह में प्रसादयुगीन साम्यवादी दर्शन से प्रेरित विद्रोह और क्रान्ति के स्वर सुनाई पड़ते हैं। **'संघर्ष'** सर्ग के अन्त में **"धूम-केतु सा चला रुद्र नाराच भयंकर, लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर"** में आणविक अस्त्रों के प्रयोग की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। विज्ञानवाद, भौतिकतावाद, अधिनायकवाद, भोगवाद, सामन्तवाद आदि ही मानव-जीवन और समाज की वे प्रवृत्तियाँ हैं, जो सामाजिक सन्तुलन और व्यवस्था को बिगाड़ कर विषमता, कुण्ठा, दुःख, विरक्ति, परतन्त्रता, विफलता, निराशा आदि जीवन-विरोधी मनोदशाओं को जन्म देती हैं।

'कामायनी' में **समरसतावादी और आनन्दमयी चिन्तन की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि** प्रस्तुत की गई है। वास्तव में, मानव-जीवन में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ सदैव विद्यमान रही हैं जो उसके जीवन के सन्तुलन को भंग करके असन्तुलन, विषमता और विषाद को जन्म देती हैं। 'कामायनी' में इन विषमतामूलक, विघटनकारी प्रवृत्तियों का उदय तीन स्तरों पर दर्शाया गया है— **1. सांस्कृतिक स्तर पर 2. पारिवारिक स्तर पर तथा 3. शासकीय और प्रशासकीय स्तर पर।** कामायनी के प्रारम्भ में पूरी देव-संस्कृति ही वासना के वेग में बह कर विनाश के गर्त में समा जाती है। पारिवारिक स्तर पर मनु व्यक्तिवाद की संकीर्ण भावना से ग्रस्त होकर अपनाकर पत्नी श्रद्धा और भावी सन्तान से ईर्ष्या करते हुए पलायन कर जाते हैं। शासकीय स्तर पर इड़ा सारस्वत प्रदेश पर अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित करती है और उसके लिए मनु की क्षमताओं का अपनी व्यावसायिक बुद्धि से उपयोग करती है। उधर मनु भी तानाशाही तेवर अपनाकर इड़ा के प्रति मर्यादाहीन तथा जनता के प्रति अत्याचारपूर्ण व्यवहार करता है। इस प्रकार जीवन के विविध स्तरों पर व्याप्त विषमता, विकृति, विसंगति, विघटन की समस्याएँ ही कवि को इनके शाश्वत समाधान की दिशा में सोचने को विवश करती हैं। ये समस्याएँ मूलतः कुमतिप्रसूत होने के कारण मनोवैज्ञानिक हैं। इनका समाधान भी सुमतिप्रेरित मनोविज्ञान पर आधारित चिन्तन में ही खोजा जा सकता है। इसीलिए 'कामायनी' में मनोविज्ञान के दार्शनिक चिन्तन को सुदृढ़ आधार बनाया गया है। समरसता भेदों के बीच अभेद की स्थापना की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है और आनन्द उसका शुभ परिणाम है। प्रसाद जी व्यावहारिक विचारक और कवि थे। समाज, राष्ट्र और विश्व की विषमताओं और पीड़ाओं के परिहार के लिए जिस सन्तुलित, समन्वित तथा समग्र जीवन-दृष्टि की आवश्यकता है, वही समरसतावादी दृष्टि है और उसी का सुफल है आनन्द। डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल के अनुसार **"व्यक्ति, समाज और विश्व की परिस्थितियों से सक्रिय रूप से जूझे बिना आनन्दवाद की कल्पना तो ख्याली पुलाव मात्र ही रह जाती। 'कामायनी' में अशान्त, कुण्ठाग्रस्त, असन्तुलित, पीड़ित मानव के सुखी और स्वस्थ बनाने का मार्ग सुझाया गया है। यह मार्ग है समरसता की साधना। समरसता की साधना का अर्थ है इच्छा, ज्ञान, क्रिया के सामंजस्य द्वारा विषमता और विषाद को मिटाकर आनन्द की अनुभूति करना। स्वस्थ मन आनन्द का स्त्रोत है और रुग्ण, कुण्ठित, दुराग्राही, दूषित मन विषमता और विषाद का कारण है।"**

कुमतिग्रस्त, कुण्ठित, अज्ञानी, आत्मकेन्द्रित, दुराग्रही जीवन के जीवन की विडम्बना और व्यथा ही **समरसतावादी दर्शन का पूर्व पक्ष** है। एकांगी, असन्तुलित, रुग्ण जीवन-दृष्टि के कारण ही मनु एक मायाग्रस्त जीवन के रूप में ईर्ष्या, हिंसा, बलात्कार, शोषण और उत्पीड़न, असंयत महत्त्वाकांक्षा और अधिनायकतावाद

Scanned with ACE Scanner

की दूषित प्रवृत्तियों के वशी[illegible] है। [illegible]बुद्धिवाद से प्रेरित विज्ञानवाद, औद्योगीकरण, भौतिकतावाद आदि भी मानव (जीव) को चेतना के विकास से विमुख करके स्वार्थ, व्यक्तिवाद और भोगवाद की दुःखद दिशा में प्रेरित करते हैं। इसी के कारण मनु को जनता के द्वारा दण्डित और प्रताड़ित होना पड़ता है। इड़ा को भी विज्ञानवादी संकीर्ण व्यावसायिक दृष्टि के कारण पीड़ित और विडम्बित होना पड़ता है। 'इड़ा' सर्ग में मनु स्वयं संकीर्ण स्वार्थनिष्ठ दृष्टि के दुष्परिणामों को अनुभव करते हुए कहते हैं कि यदि दृष्टि संकुचित है तो सब कुछ समीप होने पर भी मनुष्य को सन्तोष नहीं होता है–

**सब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि।**
**दुख देगी ये संकुचित दृष्टि।।**

मनु स्वयं आत्मावलोकन के आधार पर अनुभव करते हैं–

**मुझमें ममत्वमय आत्म-मोह स्वातन्त्रमई उच्छृंखलता।**

अज्ञान के अन्धकार के कारण मनुष्य की चेतना पर माया का आवरण पड़ता जाता है और उसकी चेतना विलुप्त होती चली जाती है। चेतना के तिरोहित होने से जीवन में द्वन्द्व और द्वैत बुद्धि का विकास होता है–

**कितनी चेतनता की किरणें हैं डूब रहीं ये निर्विकार।**

द्वैत बुद्धि के कारण ही सारी जनता वर्ण-भेदों और जाति-भेदों में विभक्त होकर विषमात की सृष्टि और समरसता का विनाश करती है–

**द्वयता में लगी निरन्तन ही वर्णों की करनी रहे सृष्टि।**
**अनजान समस्याएँ गढ़ती रचती हो अपनी ही विनष्टि।।**

स्पष्ट है कि मनुष्य या जीव की जड़ता या अज्ञान ही मनुष्य की मति को सुमति से कुमति की ओर प्रेरित करके समरसता और संस्कृति से विकृति और विषमता की ओर प्रवृत्त करता है।

समरसता और आनन्दवाद के पूर्व पक्ष के विवेचन के उपरान्त अब समरसता के उत्तर पक्ष अर्थात् **समरसता के प्रमुख घटकों पर प्रकाश** डालना सर्वथा तर्कसम्मत होगा। कामायनी में समरसता की साधना का निरूपण शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर किया गया है। मनुष्य अज्ञानवश अपने मूल चेतन-स्वरूप या अपने अन्दर निहित चिति शक्ति को भूल कर नाना विसंगतियों से ग्रस्त होकर दुःख पाता है। ज्ञान द्वारा अपने चेतन स्वरूप को पुनः पहचानना ही प्रत्यभिज्ञान है। जब मनुष्य अपने चेतन स्वरूप में अवस्थित होता है तो उसे समूचा जगत् भी सत्यस्वरूप प्रतीत होता है। सर्ग अर्थात् जगत् परम शिव की इच्छा का परिणाम है। अतः इसे मिथ्या या असत् मानकर इससे विरक्त होना उचित नहीं है–

**काम-मंगल से मण्डित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम।**
**तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भवधाम।**

अतः **जगत् के प्रति प्रवृत्तिमार्गी जीवन-दृष्टि** समरसता-साधना का प्रमुख घटक है। समरसता-सिद्धान्त में जगत् के प्रति तपस्वियों या विरक्तों की **वैराग्यमयी दृष्टि का खण्डन** किया गया है–

**तप नहीं केवल जीवन-सत्य करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,**
**तरल आकांक्षा से है भरा सो रहा आशा का आह्लाद।।**

शक्तियुक्त शिव ही परमशिव है और वही महाचित या परम चैतन्य है, जो विश्व के कण-कण में अभिव्यक्त और व्याप्त है। **जगत् परम शिव या महाचित का लीला-विलास** होने के कारण सत्स्वरूप और आनन्दमय है–

**कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त।**
**विश्व का उन्मीलन अभिराम, उसी में सब होते अनुरक्त।।**

'कामायनी' में समरसतावाद के अन्तर्गत **काम के उदात्त एवं सात्त्विक रूप की प्रतिष्ठा** की गई है। श्रद्धा परिष्कृत रति या काम-भावना का समुज्जवल स्वरूप है। श्रद्धा अवतरण ही काम का ऊर्ध्वमुखी उदात्त सन्देश देने के लिए हुआ है–

**यह लीला जिसकी विकस चली वह मूल शक्ति थी प्रेम-कला।**
**उसका सन्देश सुनाने को संसृति में आई वह अमला।।**

Scanned with ACE Scanner

कर्म से अर्जित भोग और भोग से अर्जित शक्ति या प्रेरणा से पुनः कर्म में प्रवृत्त होने का सन्देश भी 'कामायनी' के समरसतावाद का मुख्य बिन्दु है। **कर्म और भोग का सामरस्य** प्रसाद जी का अभिप्रेत है–

**कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन आनन्द।**

**इच्छा, ज्ञान, क्रिया का सामंजस्य** भी समरसतावदी साधना का प्रमुख घटक है। इन तीनों में अन्विति न होने से जीवन में विघटन और बिखराव आता है। महाज्योति रेखा-सी श्रद्धा के एक मुस्कान मात्र से इच्छा, ज्ञान, क्रिया के तीनों गोलकों में अभिन्नता और अन्विति उत्पन्न हो गई–

**स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।**
**दिव्य अनाहत पर निनाद से श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।।**

**सुख-दुःख में समत्व-भावना** भी समरसता-साधना का प्रमुख घटक है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में समरस की साधना सुख और दुःख के द्वन्द्व से ऊपर उठकर दुःख को भी विकास-प्रक्रिया का अभिन्न अंग मानने में सम्पन्न होती है। दुःख के बिना सुख और विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। दुःख की काली रजनी के आवरण के मध्य से ही सुख का सवेरा विकसित होता है–

**दुःख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात।**
**एक परदा वह झीना नील, छिपाते हैं, जिसमें सुख गात।।**

प्रसाद के अनुसार जिस दुःख को संसारी जीव अभिशाप समझते हैं, वह ईश्वर का रहस्यमय वरदान है। सुख और दुःख में भेदन करने के कारण ही विश्व विष्णता की पीड़ा से ग्रस्त हो रहा है, किन्तु वास्तविकता यह है कि जीवन के विकास में दुःख की सुख के समान महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अतः सुख-दुःख में समत्व का बोध करना ही ब्राह्मी दृष्टि है, जिसे भूमा कहा जाता है–

**विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पन्दित विश्व महान्।**
**यही दुःख-सुख विकास का सत्य यही भूमा मधुमय दान।।**

'कामायनी' एक शक्ति-काव्य है। इसमें अशक्त, पराधीन, कुण्ठित, निरुपाय, **जीव को शक्ति का सन्देश** दिया गया है, जिससे कि वह अपने वास्तविक सबल स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान (पहचान) कर सके। शक्तिसम्पन्न व्यक्ति ही पराधीनता के पाश को विच्छिन्न करके विजयी बन सकता है–

**और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान–**
**'शक्तिशाली हो, विजयी बनो' विश्व में गूँज रहा जयगान।।**

वास्तव में, 'कामायनी' में श्रद्धा को विश्व-मंगला काम-कला और शक्ति-स्वरूप चिति के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। वही विश्व-चेतना का मूर्त रूप है। वही जगत् की एकमात्र मंगल-कामना है। 'कामायनी' के 'आनन्द' सर्ग में श्रद्धा के इसी दिव्य एवं विराट् रूप को दर्शाया गया है। यह श्रद्धा-भावना ही भूमा-दृष्टि है, श्रद्धा ही पूर्ण काम की प्रतिमा है–

**वह कामायनी जगत् की मंगल-कामना अकेली।**
**थी ज्योतिष्मती प्रफुल्लित मानस तट की वन बेली।।**
**वह विश्व-चेतना पुलकित थी पूर्ण काम की प्रतिमा।**
**जैसे गम्भीर महाह्रद हो भरा विमल जल महिमा।।**

वास्तव में समरसता जीवन और जगत् में व्यवहार करने की एक संश्लिष्ट, समग्र, समत्वमयी, अभेदमूला दृष्टि और साधना है। इस साधना का ही सुफल है **आनन्द**। 'आनन्द' एक दिव्य या अलौकिक अनुभूति है। इसमें दुःख-सुख का द्वन्द्व नहीं रहता। यह सुख-दुःख से परे एक द्वन्द्वातीत अनुभूति है। इसमें जड़ और चेतना समरस हो जाते हैं। जड़ता विगलित हो जाती है और केवल चेतना ही रह जाती है।

**समरस थे जड़ या चेतना सुन्दर साकार बना था।**
**चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।।**

Scanned with ACE Scanner

**? छायावादी काव्य परंपरा में निराला का स्थान निर्धारित कीजिए।**

*अथवा*

**छायावादी काव्य परंपरा में आप निराला को किस स्थान पर रखते हैं?**

उत्तर–सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी छायावाद के चार प्रमुख आधार स्तंभों–श्री जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत तथा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'–में से एक हैं। निस्संदेह छायावादी काव्य परंपरा में उनका स्थान अति विशिष्ट है। एक भी महाकाव्य के प्रणेता न होते हुए भी ये महाकवि कहलाते हैं। छायावाद की समय सीमा, जो 1920 से 1938 तक मानी जाती है, इसमें निराला जी ने अनामिका (1923), परिमल (1930), गीतिका (1936) व तुलसीदास (1938) आदि काव्य ग्रंथों की रचना की। उपयुक्त चारों ही रचनाओं में तमाम छायावादी प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं।

छायावादी काव्य के इतिहास में पंत के पल्लव के समान निराला के परिमल का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे छायावाद का प्रतिनिधि काव्य कहा जाता है। इस रचना में 'जागृति में सुप्ति थी', 'जुही की कली', 'जागो फिर एक बार', 'प्रिया के प्रति', 'अध्यात्म फल', 'अधिवास', 'ध्वनि', 'विस्मृत भोर', 'पंचवटी', 'विधवा' आदि कविताएँ संकलित हैं। रचनाओं में प्रेम, सौंदर्य, करूणा व रहस्य भावना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। राष्ट्रीय चेतना की सूक्ष्म अनुभूतियों की व्यंजना जितनी गंभीर और प्रौढ़ स्वरों में **परिमल** में हुई है, उतनी उस समय तक छायावाद के किसी अन्य कवि की वाणी में नहीं हो पाई। **परिमल** की कविताओं में सचमुच समूची जाति के मुक्ति का प्रयास का पता चलता है। परिमल की कविताओं में विषय की विविधता को देखते हुए जहाँ शुक्ल जी ने कहा है–**''निराला में बहु वस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा है।''** वहीं डॉ. नगेन्द्र का इस विषय में कथन है–**''निराला की एक ही समय की रचनाओं में दिखाई देने वाली यह अनेक रूपता संभवतः उनके अध्ययन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत है। अन्य कवियों की जैसे पन्त की, अनेकरूपता काल में विस्तृत साधना की विशेषता है–जैसे-जैसे युग बदलता है, कवि यथार्थ के लिए स्तरों और आयामों के प्रति सजग होता चलता है। किंतु निराला अद्वैत दर्शन से भिखारी के जीवन तक फैले युग सत्य के विविध स्तरों और आयामों को मानो एक साथ ही अपनी साधना में समेट लेना चाहते हैं। यह सूक्ष्म गवेषणा का विषय है कि उसके जीवन में जो बिखराव आया, उसे चेतना और शिल्प के उनके आरंभिक बिखराव या विस्तार से कहाँ तक संबद्ध किया जा सकता है।''**

परिमल के साथ ही निराला जी की अनामिका और गीतिका भी बड़ी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। अनामिका में संकलित महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं–'हताश', 'हिंदी के सुमनों के प्रति पत्र', 'सच है', 'सरोज-स्मृति' व 'राम की शक्ति पूजा'। इसी प्रकार गीतिका में संकलित महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं–'रंग गई पग-पग धन्य धरा', 'अमरण भर वरण-गान', 'सखि, वसंत आया', '(प्रिय) यामिनी जागी', 'मौन रही हार', 'नयनों के लाल डोरे', 'गर्जन से भर दो वन', 'वर दे', 'वीणा वादिनी वर दे!', 'पावन करो नयन!', 'भारति, जय-विजय करे!', 'प्रात तव द्वार पर', आदि।

अनामिका में संकलित दो कविताएँ–'सरोज-स्मृति' व 'राम की शक्ति पूजा' जो दोनों ही लंबी कविताएँ हैं, छायावाद की उपलब्धियाँ मानी जाती हैं। सरोज-स्मृति हिंदी का श्रेष्ठ शोक गीत है, जो निराला जी की अपनी

Scanned with ACE Scanner

असामयिक दिवंगता पुत्री सरोज को श्रद्धांजलि है। पुत्री को श्रद्धांजलि देने के साथ ही निराला जी ने इस कविता में अपने व्यक्तिगत कष्टों और अपने जीवन की संघर्ष की सफलता-असफलता को मुखरित किया है–

**कन्ये मैं पिता निरर्थक था**
**कुछ भी तेरे हित कर न सका।**

इसी प्रकार 'राम की शक्ति पूजा' में निराला जी ने एक ऐतिहासिक प्रसंग द्वारा धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है। राम धर्म के प्रतीक हैं और रावण अधर्म का। इस कविता में अधर्म का चित्रण एक प्रचंड शक्ति के रूप में हुआ है, जिसके सामने एक बार तो राम का साहस भी कुंठित होने लगता है। यह स्थिति एक ओर तो कवि के व्यक्तिगत जीवन के भयानक संघर्ष से संबद्ध हो जाती है तो दूसरी ओर युगीन यथार्थ की विकरालता को भी प्रकट करती है। अंत में राम शक्ति की मौलिक कल्पना करते हैं। उसकी आराधना करते हैं और अधर्म के विनाश के लिए सक्षम होते हैं। शक्ति की उपासना में एक ओर तो परंपरागत सत्य की स्वीकृति का संकेत निहित है और दूसरी ओर मौलिक कल्पना इस बात पर बल देती है कि प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों का युगानुरूप संशोधन अनिवार्य है।

'अनामिका', 'परिमल' व 'गीतिका' के अतिरिक्त इस दौर में निराला जी ने तुलसीदास नामक खंडकाव्य की रचना की है। इस खंड काव्य में उन्होंने लोक में प्रचलित उस कथा को आधार बनाया है, जिसके अनुसार यह माना जाता है कि जब तुलसीदास बिना बुलाए अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने के लिए उसके नैहर पहुँचे, तब उसने उन्हें फटकारा, जिसका प्रभाव यह हुआ कि तुलसीदास गृहस्थ जीवन त्याग कर रामोपासना में लीन हो गए। इस रचना में निराला जी ने व्यक्तिगत सुख और जीवन के महान एवं व्यापक मूल्यों के बीच संघर्ष दिखाकर अंत में उदात्त मूल्यों की विजय दिखाई है।

अतः छायावादी युग में रचित निराला जी की उपयुक्त चारों रचनाओं का संक्षिप्त परिचय पा जाने के उपरांत जब हम छायावाद की प्रमुख विशेषताओं को इन रचनाओं में खोजते हैं तो स्वतः ही हम छायावादी काव्य परंपरा में निराला जी का स्थान निर्धारित करने में समर्थ हो जाते हैं। छायावाद की सामान्य विशेषताएँ हैं–

**1. व्यक्तिगत सुख-दुखों की प्रधानता**–व्यक्तिगत सुख-दुखों की प्रधानता से अभिप्राय है अपनी कविताओं में प्रधान रूप से अपने सुख-दुखों की अभिव्यक्ति करना। अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला जी की इन रचनाओं में भी उनके व्यक्तिगत सुख-दुखों की मार्मिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। यथा–सरोज स्मृति में निराला जी लिखते हैं–

**''दुःख जी जीवन की कथा रही**
**क्या कहूँ आज जो नहीं कही।**
**हो इसी कर्म पर वज्रपात।**
**यदि धर्म, रहे नत सदा साथ।''**

**2. प्रकृति-चित्रण**–प्रकृति चित्रण छायावादी काव्य परंपरा की महत्त्पूर्ण प्रवृत्ति है। प्रायः सभी छायावादी कवियों ने अपने अपने काव्य में प्रकृति का आलंबन, उद्दीपन, मानवीकरण व अन्याय रूपों में चित्रण किया है। कवियों ने प्रकृति चित्रण के द्वारा प्रायः अपनी निजी अनुभूतियों का व्यक्तिकरण भी किया है। सुमित्रानंदन पंत जी तो इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण प्रकृति के सुकुमार कवि ही कहलाते हैं। निराला जी ने भी अपने साथी कवियों का साथ देते हुए अपनी इन रचनाओं में प्रकृति के उद्धाम चित्र खींचे हैं। यथा–'जुही की कली' में मानवीकरण रूप में प्रकृति का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं–

**''विजन वन बल्लरी पर**
**सोती थी सुहाग भरी-स्नेह स्वप्न मग्न-**
**अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,**
**दृग बंद किए, शिथल-पत्रांक में,**
**वासंती निशा थी;**
**विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़**

Scanned with ACE Scanner

किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।''

निराला जी प्रतीकात्मक रूप में भी प्रकृति चित्रण में सिद्धहस्त हैं, बादल राग कविता में वे बादल को क्रांति के रूप में इस तरह प्रस्तुत करते हैं–

''बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता है संसार,
सुन-सुन घोर वज्र हुंकार।''

3. **नारी सौंदर्य व प्रेम का चित्रण**–छायावादी काव्य परंपरा में नारी सौंदर्य एवं प्रेम के चित्रण की प्रवृत्ति भी बड़ी प्रधान है। प्रायः सभी कवियों ने नारी-सौंदर्य व प्रेम का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। हालांकि इन कवियों का यह चित्रण रीतिकालीन कवियों की भांति स्थूल और नग्न न होकर अपेक्षाकृत सूक्ष्म और श्लील है। निराला जी के काव्य में तो वैसे भी स्त्रियों को काफी उदारता से देखा गया है। नारी सौंदर्य का उदात्त रूप में वर्णन करते हुए निराला जी अपनी कविता सरोज-स्मृति में लिखते हैं–

''धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज तारुण्य सुधर
आई, लावण्य भार थर-थर
कौंपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नववीणा पर।''

इसी प्रकार आपनी कविता नयनों के लाल डोरे में निराजी जी सूक्ष्म व श्लील रूप में प्रणय चित्रण करते हुए लिखते हैं–

''नयनों के डोरे लाल गुलाल-भरे, खेली होली!
जागी रात सेज प्रिय पति संग रति सनेह रंग घोली,
दीप्ति दीप-प्रकाश, कंज छवि मंजु-मंजु हँस खोली–
मली मुख-चुंबन रोली।''

4. **रहस्य भावना**–छायावाद में बाह्य पदार्थों की अपेक्षा आंतरिकता की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह आंतरिक या अंतर्मुखी प्रवृत्ति मनुष्य को रहस्यवाद की ओर उन्मुख करती है। इसलिए छायावाद के प्रत्येक कवि ने रहस्यवादी भावना की अभिव्यक्ति की है। महादेवी प्रेम वेदना, पंत प्रकृति, प्रसाद परमसत्ता व निराला तत्व ज्ञान के कारण रहस्य भावना की ओर उन्मुख हुए। इस क्षेत्र में महादेवी को छोड़कर प्रसाद, पंत व निराला की रहस्य भावना में कबीर व दादूदयाल के रहस्यवाद की सी तीव्र अनुभूति नहीं पाई जाती। फिर भी निराला के काव्य में अनेक स्थलों पर यह भावना अपनी तीव्र व्यंजकता के साथ मुखरित हुई है। अपनी कविता 'अधिवास' में अपनी इसी भावना का परिचय देते हुए वे लिखते हैं–

''कहाँ–
मेरा अधिवास कहाँ?
क्या कहा?–रूकती है गति जहाँ?
भला इस गति का शेष
संभव है क्या,
करुण स्वर का जब तक मुझमें
रहता है आवेश?''

5. **राष्ट्रीय प्रेम**–छायावादी काव्य परंपरा में यह प्रवृत्ति छायावादी कवियों में अपेक्षाकृत कम ही देखने को मिलती है। निराला जी को छोड़कर यह प्रवृत्ति केवल प्रसाद में दिखाई देती है। महादेवी व पंत जी का

Scanned with ACE Scanner

ध्यान इस युग में इस ओर नहीं गया है। प्रसाद और निराला जी में भी तुलना करने पर यह प्रवृत्ति निराला जी में ही अधिक प्रबलता के साथ मुखरित हुई है। उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। 'वर दे, वीणावादिनी वर दे!', 'भारति, जय, विजय करे' आदि कविताएँ उनके राष्ट्रीय प्रेम को अभिव्यक्त करती है। 'भारति, जय, विजय करे!' कविता में वे लिखते हैं–

**''भारति, जय, विजय करे!**
**कनक-शस्य-कमल धरे!**
**लंका पदतल शतदल**
**गर्जितोर्मि सागर जल,**
**धोता शुचि चरण युगल**
**स्तव कर बहु अर्थ भरे।''**

6. **दार्शनिक चेतना**–निराजी जी के काव्य में अपने समकालीन अन्य छायावादी कवियों की तुलना में दार्शनिक चेतना अधिक मुखरित हुई है। इनकी रचनाओं पर दर्शन का प्रत्यक्ष और गंभीर प्रभाव है। 'अधिवास', 'पंचवटी प्रसंग', 'तुम और में' आदि रचनाओं में उन्होंने दार्शनिक सत्य को रूपायित करने का प्रयास किया है। परिमल और गीतिका में कुछ प्रार्थना और वन्दना गीत मिलते हैं, जो निराजा जी के काव्य को मध्यकालीन भक्ति परंपरा से जोड़ते हैं। इन गीतों में भी उनकी दार्शनिक चेतना के दर्शन होते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का इस विषय में कथन है–**''निराला दार्शनिक कवि हैं। कुछ दर्शनशास्त्र उन्होंने किताबों में पढ़ा था, कुछ रामकृष्ण मिशन के साधुओं के साथ रहते हुए सुना था, बहुत कुछ अपने जीवन के विषाक्त अनुभवों में स्वयं देखा था। अनुभवों में जो देखा था वह पढ़े और सुने हुए दर्शनशास्त्र से हमेशा मेल न खाता था। इसलिए उनके काव्य में सुव्यवस्थित दार्शनिक चिंतन की जगह परस्पर विरोधी विचार मिलेंगे, जिनमें एक तरह के विचारों को स्रोत है पढ़ा और सुना हुआ दर्शन शास्त्र और दूसरी तरह के विचारों का स्रोत है उनका अपना अनुभव-जन्य ज्ञान। चाहते वह यही हैं कि चारों ओर उन्हें ब्रह्म का आनंदमय प्रकाश दिखाई दे।''** इस प्रकाश की कल्पना करके वह लिखते हैं–

**''गई निशा वह, हँसी दिशाएँ, खुले**
**सरोरुह, जगे अचेतन।''**

7. **स्वच्छंदतावाद**–छायावादी कवियों ने अहंवादी होने के कारण विषय, भाव, कला, धर्म, दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को अपनाया। उन्हें अपने हृद्योद्गारों को अभिव्यक्त करने के लिए किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन और रूढ़ियाँ स्वीकार नहीं थीं। भाव क्षेत्र में भी उन्होंने इसी क्रांति का प्रदर्शन किया। वस्तुतः इन कवियों के लिए प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक दिशा का मार्ग उन्मुक्त था। इनके लिए कोई भी वस्तु काव्य विषय बनने के लिए उपयुक्त थी। निराला जी में भी यह प्रवृत्ति अपने साथी कवियों के साथ विपुल मात्रा में देखने को मिलती है। वे कहते हैं–

**''मैंने मैं शैली अपनाई,**
**देखा एक दुःखी निज भाई**
**दुख की छाया पड़ी हृदय में**
**झट उमड़ वेदना आई।''**

8. **मानवतावाद**–छायावादी काव्य में मानवतावादी दृष्टिकोण विविध रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। छायावादी कवियों ने युग-युग से उपेक्षित नारी को सदियों की कारागार से मुक्त करने का स्वर अलापा। उन्होंने नारी के तन को न देखकर उसके मन को देखा और उसके मानसिक सौंदर्य के अनेक छविमय विमोहक चित्र अंकित किए। निराला जी ने विधवा जैसी कविता की रचना करके अपनी इस दृष्टि से अपने को अग्रणी भूमिका में प्रस्तुत किया, जिसमें वे लिखते हैं–

**''वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी**
**वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन**

Scanned with ACE Scanner

**वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा-सी**
**वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन**
**दलित भारत की ही विधवा है।''**

यही नहीं उन्होंने अपने काव्य में समस्त् विश्व मानवता के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यंजना की है। उनके लिए भारतीय और अभारतीय में कोई अंतर नहीं सर्वत्र एक ही आत्मा व्याप्त है। विश्व मानवता की प्रतिष्ठता उनका आदर्श है। यही कारण है कि वे भिक्षुक कविता में भिखारी के प्रति दयार्द्र होकर लिखते हैं–

**''वह आता**
**दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।**
**पेट-पीठ दोनों है मिलकर एक**
**चल रहा लकुटिया टेक।''**

निराला जी का काव्य समस्त् विश्व के शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति करता है।

**9. भाषा-शैली**–निराला जी की काव्य भाषा अन्य छायावादी कवियों की भाँति पूर्ण रूपेण छायावादी काव्य परंपरा का प्रतिनिधित्व करने वाली साहित्यिक खड़ी बोली है। हालांकि निराला जी की मातृ-भाषा बंगाली रही है, परन्तु उन्होंने हिंदी और संस्कृत भाषा का भी गहन अध्ययन किया था, उस अध्ययन की स्पष्ट परिणति उनकी काव्य भाषा में दिखाई देती है। उनकी भाषा में भी विषयों के वैविध्य के अनुरूप वैविध्य दिखाई देता है। कहीं पर इन्होंने घोर तत्सम् प्रधान भाषा का प्रयोग किया है तो कहीं पर जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त सरल, सहज भाषा का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं इनकी भाषा में विदेशी शब्दों का बाहुल्य भी देखने को मिलता है। इनकी भाषा यथा प्रसंग-प्रसाद, माधुर्य व ओज गुणों से युक्त है। इनकी छायावादी कविताओं में माधुर्य गुण की अधिकता है, जो छायावादी कवियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। छंद की दृष्टि से निराला जी युगान्तकारी कवि हैं तथा मनुष्य की स्वतंत्रता की भांति कविता की भी स्वतंत्रता चाहते हैं। अतः मुक्त कविता के प्रवर्तक ही नहीं घोर समर्थक भी हैं। इनका विधान और प्रतीक योजना भी समकालीन कवियों के साथ साम्य रखती है। इन्होंने कुछ नए प्रतीकों को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। अलंकारों की दृष्टि से इनकी भाषा अनायास रूप से समृद्ध है। इन्होंने प्रचलित अलंकारों के साथ-साथ मानवीकरण व विशेषण-विपर्यय आदि अलंकारों का भी बहुतायात में प्रयोग किया है। ये लाक्षणिक रूप में अपनी बात कहने में समर्थ हैं तथा लाक्षणिक शब्दावली का भी अपनी भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं। इनकी काव्य भाषा में इसके अतिरिक्त संगीतात्मकता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने ध्वन्यात्मकता व नाद सौंदर्य को बनाए रखने के लिए उचित व समान ध्वनि वाले वर्णों का अधिक प्रयोग किया है। इनकी तुकांत योजना भी संगीतात्मकता की पुष्टि करती है। इन्होंने छायावादी कवियों के अनुरूप अपनी अभिव्यक्ति हेतु मुख्यतः आत्मकथात्मक, संबोधन, प्रतीकात्मक, चित्रात्मक व भावनात्मक शैलियों को अपनाया है।

इस प्रकार छायावादी काल में निराला जी द्वारा रचे गए काव्य एवं उस काव्य में मौजूद विशेषताओं का विवेचन करने के उपरांत हम कह सकते हैं कि छायावादी काव्य परंपरा में निराला जी का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। वे छायावाद के चार आधार स्तंभों में से एक ही नहीं है, अपितु अपनी रचनाओं से उसका पोषण करने वाले हैं। उनकी रचनाओं में अपने समकालीन कवियों की तुलना में यदि प्रकृति-चित्रण (पंत से) व रहस्य भावना (महादेवी से) जैसी कुछ विशेषताएँ अपेक्षाकृत कम तीव्रता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं तो व्यक्तिगत सुख-दुख की भावना, नारी सौंदर्य व प्रेम चित्रण, राष्ट्रीय भावना, दार्शनिक चेतना, स्वच्छंता व मानवतावाद कुछ अधिक तीव्रता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। इनकी भाषा शैली भी अपने समकालीन कवियों के समकक्ष स्थान रखती है। अतः कहा जा सकता है कि छायावाद का जनक होने के कारण यदि छायावादी काव्य में जयशंकर प्रसाद जी का स्थान ब्रह्मा के समान है तो छायावादी काव्य का पोषण करने के कारण छायावादी काव्य परंपरा में निराला जी का स्थान विष्णु के समान है।

❐

Scanned with ACE Scanner

? **'राम की शक्ति पूजा' की विशेषताएँ लिखिए।**

*अथवा*

**निराला की 'राम की शक्ति पूजा' की विवेचना कीजिए।**

*अथवा*

**'राम की शक्ति पूजा' के काव्य सौष्ठव का विश्लेषण कीजिए।**

*अथवा*

**निराला की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि के आधार पर 'राम की शक्ति पूजा' कविता का मूल्यांकन कीजिए।**

**उत्तर**–'राम की शक्ति पूजा निराला' की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में से एक है। यह रचना अपनी एपिक क्वालिटी, महाकाव्यात्मक औदात्य, अभिनव कल्पना, नाटकीयता, चारित्रिक औदात्य, रसानुरूप संगीतात्मकता, नवीन प्रतीक विधान तथा भाषा सौन्दर्य एवं छन्द नवीनता की विशिष्टताओं के कारण हिन्दी वाङ्मय की अद्वितीय कृति है। डॉ० रामविलास शर्मा का कथन है कि– **'राम की शक्ति पूजा' जैसी नाटकीयता निराला की और किसी भी कविता में नहीं। यहाँ उन्होंने अपने जीवन की अनुभूति, निराशा, पराजय, संघर्ष और विजय-कामना को नाटकीय रूप दिया है।'** साथ ही वह कहते हैं कि– **"अन्तर्द्वन्द्व देखने, भावों और विचारों के संघर्ष को मूर्त्त रूप को देने की कला का चरम विकास 'राम की शक्ति पूजा' में है, यह निराला की बहुत बड़ी उपलब्धि है।"** आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का कथन है कि– **"राम की शक्ति पूजा के स्वल्प आकार-प्रकार का परम प्रौढ़ प्रबन्धकाव्य विश्व की किसी भी भाषा में नहीं लिखा गया।"** डॉ० उपेन्द्र कुमार शर्मा के अनुसार– **'राम की शक्ति पूजा' महाकाव्य की गरिमा एवं औदात्य की अभिव्यक्ति है तथा निराला की प्रतिभा का चरम निदर्शन है। इसमें कथा के माध्यम से कवि के अन्तर्मन का संघर्ष व्यंजित हुआ है। यह सत्-असत् का संघर्ष है .... ..... महान कथानक महान पात्र, महान विचार, विराट बिम्बविधान, ओजपूर्ण सामासिक पदावली, स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्व और अटल निष्ठा के द्वारा इस रचना में औचित्य का समावेश हुआ है। विश्व साहित्य में यह एक अद्वितीय रचना है।** इस प्रकार निराला विरचित–**'राम की शक्ति पूजा'** एक उत्कृष्ट रचना है, जिसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है–

**उदात्त कथानक**–राम की शक्ति पूजा का कथानक महाकाव्यात्मक औदात्य से अभिसिक्त है। इसमें मूल रूप से राम-रावण युद्ध कथा को उठाकर, सत-असत् का संघर्ष चित्रित किया गया है। कथा का प्रारम्भ युद्ध दृश्य से होता है। अपराजेय रह जाने वाले युद्ध के पश्चात् रात्रिकाल में पर्वत और समुद्र की पीठिका पर राम तथा उनके सैन्य दल का चित्रण किया गया है, साथ ही कवि ने प्रकृति के विकराल रूप व रावण की अदम्य शक्ति का मूर्त्त चित्र प्रस्तुत किया है। रावण के असत् पथ पर होने पर भी महाशक्ति द्वारा उसे प्रश्रय देने पर राम अपनी विजय के प्रति शंकाकुल हो उठते हैं–

**स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय**
**रह-रह उठता जाग जीवन में रावण जय-भय**
**जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य-श्रान्त–**
**एक भी, अयुत लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,**
**कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार**
**असमर्थ मानना मन उद्यत हो हार-हार।**

ऐसे अवसाद क्षणों में राम को सीता से विदेह में होने वाली प्रथम भेंट स्मृत हो आती है और वह प्रफुलित हो उठते हैं। लेकिन फिर रावण का भयंकर रूप, देवी द्वारा रावण को दिया गया प्रश्रय और जानकी को मुक्त न करा पाने की विवशता से राम उद्विग्न व निराश हो उठते हैं और विभीषण के पूछने पर उनकी आँखें छलछला उठती है–

**अन्याय जिधर है, उधर शक्ति कहते छल छल**
**हो गये नयन, कुछ बूँद पुन ढलके दृग जल**

Scanned with ACE Scanner

राम को दुःखी देख कर, हनुमान उत्तेजित होकर महाकाश को निगलने के लिए चल पड़ते हैं, लेकिन महाकाश में महाशक्ति माँ अंजना का रूप धारण कर हनुमान को समझाती है और हनुमान पृथ्वी पर श्रीराम के चरणों में लौट आते हैं। जाम्बवान की सलाह पर श्रीराम पर्वत रूप में देवी की कल्पना कर महाशक्ति-आराधना का अनुष्ठान करते हैं। लेकिन पुनश्चरण तप की अन्तिम स्थिति में जब राम का मन सहस्रार को पार करता है तो देवी परिहासवश अन्तिम नीलकमल उठाकर ले जाती है, जिससे राम निराश होकर अपने जीवन को धिक्कारने लगते हैं–

**धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,**
**धिक् सा धन जिसके लिए सदा ही किया शोध!**
**जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका।**

लेकिन हार न मानने वाले दृढ़ संकल्पी राजीवलोचन राम जब कमल के स्थान पर अपना नेत्र निकाल कर महाशक्ति को समर्पित करने को उद्यत हो गए तो देवी तत्काल प्रकट हो गई और उन्होंने राम का हाथ पकड़ कर, उन्हें विजय का आशीर्वाद दिया–

**होगी जय् होगी जय् हे पुरुषोत्तम नवीन**
**कह महाशक्ति राम के वन्दन में हुई लीन।**

यहीं कथानक का समापन होता है। डॉ० उपेन्द्र कुमार शर्मा इसे कथानक का बहिरंग रूप मानते हुए कहते हैं कि – **'यह था कथा का बहिरंग स्वरूप। कथा का एक अन्तरंग स्वरूप भी है, जिसका घटनास्थल आभ्यन्तरिक जगत् है तथा जिसमें मन में होने वाले अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक व्यापारों का अन्तर्भाव है। वस्तुतः मानव-मन में सत्य और असत्य का अन्तरमंथन चलता रहता है। मन की विकासात्मक भूमि सात्विक और तामसिक वृत्ति के अर्न्तद्वन्द्व को झेलती रहती है। सत्य को प्राप्त करने की यह अनिवार्य प्रक्रिया है। असत्य पर विजय यद्यपि दुस्साध्य है तो भी मनुष्य को कृतसंकल्प हो कर संघर्ष करना चाहिए।''**

इस प्रकार 'राम की शक्तिपूजा' का कथानक उदात्त भाव को लेकर चलता है। कथानक योजना भी सुनियोजित है। सम्पूर्ण कथानक को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है–राम रावण युद्ध, राम की निराशा और हनुमान द्वारा महाकाश को निगलने का प्रयास, जाम्बवान द्वारा शक्तिपूजा करने का परामर्श, राम द्वारा शक्ति उपासना। ये तथा चारों शक्ति भाग कथानक की क्रमशः प्रारम्भ, प्रयत्न, प्रयास, उद्‌बोधन, नियताप्ति तथा फलागम अवस्थाएँ मानी जा सकती हैं। सम्पूर्ण कथानक में नाटकीयता एवं औत्सुक्य व जिज्ञासा गुण विद्यमान है।

आधार की दृष्टि से राम की शक्ति पूजा का कथानक पौराणिक है, जिसके कथा सूत्र वाल्मीकि रामायण, देवी भागवत् शिव महिम्न स्रोत–कीर्तिदास रचित बंगला रामायण, रामचरितमानस से लिए गए हैं। डॉ० द्वारिका प्रसाद 'राम की शक्ति पूजा' पर रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द का भी प्रभाव मानते हैं। उनका कथन है कि – **''कवि निराला ने देवी भागवतपुराण, शिवतांडवस्रोत, शिवमहिम्नस्रोत्र वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस आदि विविध ग्रन्थों से सामग्री उपलब्ध करके रामकाव्य की परम्परा में निर्मित 'राम की शक्ति पूजा' नामक प्रबन्ध काव्य के कथानक का सृजन किया है। इस पर रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द का भी प्रभाव है, क्योंकि महाशक्ति की पूजा का भाव कवि को इनसे प्राप्त हुआ है।''** साथ ही द्वारिका जी का 'राम की शक्ति पूजा' में विद्यमान प्रतीकात्मकता के सन्दर्भ में कथन है कि – **''निराला कृत 'राम की शक्ति पूजा' नामक काव्य वैसे तो रामकाव्य की परम्परा में एक नूतन प्रयोग के रूप में प्रतिष्ठित है और युग चेतना को झकझोरने वाला सशक्त काव्य है, परन्तु इसमें निराला के जीवन का कटु सत्य भी राम का कथानक पा कर मुखरित हो उठा है। ..... निराला के राम स्वयं निराला के प्रतीक हैं जो सामाजिक एवं राजनीतिक असन्तोष रूपी रावण से लोहा लेने को सन्नद्ध हैं।''** इस सन्दर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा का कथन है कि – **''राम की शक्ति पूजा'' के प्रतीक इतने सबल और भावपूर्ण हैं और वे निराला के जीवन सत्य को ऐसे नाटकीय रूप में प्रस्तुत करते हैं ..... यहाँ उन्होंने अपने जीवन की अनुभूति, निराशा, पराजय-संघर्ष और विजय-कामना को नाटकीय रूप दिया है।''**

Scanned with ACE Scanner

इस प्रकार 'राम की शक्ति पूजा' का कथानक उदात्त भाव भूमि पर स्थित है और उसमें नाटकीयता, जिज्ञासा व प्रतीकात्मकता का गुण विद्यमान है।

**उदात्त चरित्र**—निराला विरचित 'राम की शक्ति पूजा' के पात्र उदात्त हैं, यद्यपि सभी पात्र पौराणिक हैं, लेकिन निराला ने कुछ पात्रों का चरित्र-चित्रण नवीन ढंग से करने का प्रयास किया है, यथा—राम, हनुमान तथा विभीषण। पौराणिक काव्य में राम को ईश्वर अथवा असाधारण एवं अद्वितीय मानव के रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन निराला ने राम को महामानव व ब्रह्म रूप में चित्रित न करके एक साधारण मानव रूप में चित्रित किया है, जो युद्धवीर हैं, लेकिन बाधाओं से विचलित हो जाते हैं। रावण की असाधारण शक्ति से आतंकित हो राम अपनी विजय के प्रति शंकित हो उठते हैं—

**स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर**
**रह-रह उठता जग जीवन में रावण जय-जय**
**जो हुआ नहीं आज तक हृदय रिपु-दम्भ श्रान्त**
**एक भी अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त**
**कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार**
**असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार।**

राम जहाँ एक साधारण मानव की तरह दैवी शक्ति से हार मान कर आकुल हो उठते हैं, वहीं वह दृढ़ निश्चय के साथ कठोर साधना करके महाशक्ति को प्रसन्न कर विजय-वरदान भी प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार निराला के राम एक ऐसे साधारण मानव हैं, जिनमें कर्तव्यनिष्ठा-लगनशीलता, साहस एवं वीरता का गुण विद्यमान है।

राम सेवक हनुमान भी एक पौराणिक पात्र है। हनुमान राम के अनन्य भक्त है, जो राम की आज्ञा के बिना कुछ नहीं करते। लेकिन निराला के हनुमान राम के अनन्य भक्त होते हुए भी स्वतः प्रेरित चरित्र हैं, जो अपने स्वामी को व्याकुल देख कर महाकाश को निगलने के लिए आतुर हो उठते हैं। साथ ही उनके परम्परागत मातृभक्त रूप को भी चित्रित किया है।

तीसरा पात्र विभीषण है, जो पौराणिक पात्र होते हुए भी निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में परम्परागत रूप से अलग दिखाई देते हैं। जहाँ परम्परागत रूप में विभीषण 'घर के भेदी' रूप या राम के भक्त रूप में चित्रित हुए हैं। वहीं निराला के विभीषण एक प्रेरणादायक चरित्र के रूप में उभरते हैं। वह राम के अनन्य सखा है, जो निराश राम को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं और उन्हें खिन्न देख कर कह उठते हैं—

**हे सखे, विभीषण बोले, "आज प्रसन्न बदन**
**वह नहीं देख कर जिसे समग्र वीर वानर—**
**भल्लूक विगत-श्रम हो पाते जीवन-निर्झर,**
**रघुवीर, तीर सब वही तूण में है रक्षित,**
**है वही वक्ष, रण कुशल हस्त, बल वही अमित;**
**× × ×**
**रघुकुल-गौरव, लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,**
**तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण।**

इस प्रकार के वचन कह कर विभीषण निराश राम को उद्‌बोधित करते हैं।

इस प्रकार निराला के पात्र पौराणिक होते हुए भी मौलिक है और उदात्त भाव से युक्त हैं।

**भाव एवं रस योजना**—निराला की 'राम की शक्ति पूजा' एक प्रबन्धात्मक रचना है। किसी भी प्रबन्धात्मक रचना के प्राण रस व भाव होते हैं। इस दृष्टि से 'राम की शक्ति पूजा' एक विशिष्ट रचना है, जिसमें विविध भावों व रसों का सफल परिपाक हुआ है। एक तरफ राम-रावण युद्ध में रावण की असीम शक्ति को देखकर राम के मन में चिन्ता, निराशा, ग्लानि भावों का चित्रण है तो दूसरी ओर हनुमान द्वारा महाकाश को निगलने के लिए उद्यत होने की घटना में ओज, वीरता एवं उत्साह भागों का चित्रण हुआ है। इसी प्रकार विभीषण द्वारा

Scanned with ACE Scanner

राम को युद्ध के लिए प्रेरित करने में उग्रता व ओज भाव का चित्रण हुआ है। इसी प्रकार स्मृति, शंका, भक्ति, श्रद्धा भावों का भी चित्रण मिलता है। विविध भावों के चित्रण के कारण विवेच्य रचना में वीर, शृंगार, रौद्र, करुण, शान्त आदि रसों का परिपाक हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

**शृंगार रस–**

**ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत**
**जागी पृथ्वी तनया-कुमारिका-छवि अच्युत**
**देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन**
**विदेह का प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन**
**नयनों का-नयनों से गोपन प्रिय संभाषण**
**पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन**
**काँपते हुए किसलय-झरते पराग-समुदाय**

**रौद्र रस–**

**शत-वायु वेग-बल, डुबा अतल में देशभाव,**
**जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महारव**
**वज्रांग तेजघन बना पवन को महाकाश**
**पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।**
**रावण-महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार**
**यह रुद्र राम-पूजन प्रताप तेजः प्रसारः**
**उस ओर शक्ति शिव की जो दशस्कंध पूजित**
**इस ओर रुद्र वंदन जो रघुनंदन-पूजित**
**करने को ग्रस्त समस्त् व्योम कवि बड़ा अटल**

**शांत रस–**

**आठवाँ दिवस मन ध्यान युक्त चढ़ता ऊपर**
**कर गया अतिक्रम ब्रह्म-हरि शंकर का स्तर**
**हो गया विजित ब्रह्मांड, पूर्ण देवता स्तब्ध**
**हो गए दग्ध जीवन की तप के समारब्ध।**

इस प्रकार भाव एवं रस की दृष्टि से भी राम की शक्ति पूजा एक उदात्त काव्य है। डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में–**इस लघुकाय प्रबन्ध काव्य में भी कवि ने चिन्ता, स्मृति, शोक, विषाद, ग्लानि, उग्रता, शंका, आवेग आदि अनेक मनोभावों का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। यहाँ सीता-स्मृति के चित्रण में स्वयं शृंगार रस संचारी भाव बन कर उपस्थित हुआ है, हनुमान द्वारा महाकाश के निगलने में रौद्र तथा भयानक रस संचारी बन कर आए हैं और शक्ति आराधना के रूप में स्वयं शांत रस भी संचारी भाव की तरह वर्णित है, जबकि इस काव्य का अंगीरस वीर है, जो आरम्भ से अन्त तक विद्यमान है।**

**कला-पक्ष**–'राम की शक्ति पूजा' कला पक्ष की दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट रचना है। काव्यरूप की दृष्टि से यह एक विवादास्पद रचना है। कुछ विद्वान इसमें महाकाव्यात्मक औदात्य मानते हुए इसे महाकाव्य की कोटि में रखते हैं, तो कुछ इसमें रामकथा का खण्ड रूप मिलने के कारण इसे खण्ड-काव्य की कोटि में रखते हैं तो कुछ विद्वान इसे केवल प्रबन्धात्मक कविता अथवा लम्बी कविता की संज्ञा देते हैं। लेकिन इसे किसी भी कोटि में रखा जाए, कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है।

कवि ने इस काव्य में भाषा के रूप में दीर्घ समासान्त पदावली का प्रयोग किया है। रचना में ओजगुण से युक्त संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग आदि से अन्त तक विद्यमान है। कवि ने भावानुरूप वर्ण मैत्री का निर्वाह किया। कोमल भावों के लिए कोमलाकान्त पदावली तो कठोर भावों के लिए महाप्राण व कठोर पदावली का प्रयोग किया है। कठोर पदावली का उदाहरण देखिए–

**वज्रांग तेजधन बना पवन को महाकाश**
**पहुँचा एकादश रूद्र क्षुब्ध कर अट्टटहास।**

Scanned with ACE Scanner

इसके साथ ही भाषा में सामासिकता; संगीतात्मकता व ओजस्विता का गुण विद्यमान है।

कवि की अलंकार योजना मौलिक उद्‌भावनाओं से युक्त है। कवि ने इस रचना में सादृश्यमूलक एवं विरोधमूलक अलंकारों द्वारा अत्यन्त भावभीने चित्र अंकित किए हैं। अनुप्रास की छटा तो समस्त् रचना में विद्यमान है। साथ ही उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक, मानवीकरण, उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा, प्रतीप, श्लेष, सन्देह, रूपकातिशयोक्ति, उदाहरण, अपह्नुति आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

**मानवीकरण एवं रूपक–**

**देखो, बंधुवर, सामने स्थित जो यह भूधर**
**शोभित शत-हरित गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर**
**पार्वती कल्पना हैं इसकी, मकरन्द बिन्दु,**
**गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु**
**दशदिक्-समस्त् हैं हस्त, और देखो ऊपर,**
**अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर**
**लख महाभाव-मंगल पदतल धँस रहा गर्व–**
**मानव के मन का असुर मन्द, हो रहा खर्च।**

**उपमा–** **ऐसे क्षण अन्धकार-घन में जैसे विद्युत**
**जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि अच्युत।**

**सन्देह–** **सोहते मध्य में हीरक युग या दो कौस्तुभ।**

**उदाहरण–** **देखा है महाशक्ति राव को लिए अंक**
**लांछन को ले जैसे शंशाक नभ में अशंक।**

**उत्प्रेक्षा–** **उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार।**

**प्रतीप–** **मन्दस्मित मुख लख हुई विश्व की श्री लज्जित।**

इस प्रकार कवि निराला ने बिम्बात्मक एवं सजीव चित्र अंकित करने के लिए विविध अलंकारों का सफल प्रयोग किया है।

कविवर निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में ओजस्वी भावों को वहन करने वाले 24 मात्राओं के गतिशील व नूतन छन्द का प्रयोग किया। इसमें कवि ने 8-8 मात्राओं की यति से तीन पदों को जोड़कर नवीन छन्द बनाया है, जो मात्रिक होते हुए भी लय-तान से पूर्णतः युक्त हैं। डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में– **'कवि का यह नूतन छन्द छायावादी युग की नूतन कला विधायनी एवं नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का द्योतक है, क्योंकि इसमें अद्‌भुत गति है, अनुपम शक्ति है, और ओजस्वी भावों के साथ-साथ नाटकीय त्वरा से युक्त होने के कारण अद्‌भुत ओज एवं अनुपम तेज से परिपूर्ण है।'**

इस प्रकार 'राम की शक्ति पूजा' अपने उदात्त कथानक, उदात्त एवं मौलिक चरित्र चित्रण, भाव एवं रस योजना तथा विशिष्ट कला पक्ष आदि विशेषताओं के कारण हिन्दी वाङ्मय की अनुपम कृति है। इस सन्दर्भ में डॉ० कुमार शर्मा का कथन अवलोकनीय है– **'महान कथानक, महान पात्र, महान विचार, विराट् बिम्ब विधान, ओजपूर्ण सामासिक पदावली, स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्व और अटल निष्ठा के द्वारा इस रचना में औचित्य का समावेश हुआ है। विश्व-साहित्य में यह एक अद्वितीय रचना है।'** डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना 'राम की शक्ति पूजा' की विशिष्टताओं के कारण इसे महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त मानते हुए कहते हैं कि– **'राम की शक्ति पूजा अपनी साहित्यिक गरिमा, चित्रण कौशल एवं अनुभूति की उत्कृष्टता के कारण इस लघुकाव्य में ही महाकाव्य का सा गाम्भीर्य विद्यमान है। वास्तव में यह महाकाव्यों की शैली पर किया गया एक ऐसा नूतन प्रयोग है, जिसमें सांस्कृतिक पक्ष का अत्यन्त चारूता एवं भव्यता के साथ निरूपण हुआ है और साहित्यिक सौन्दर्य की अद्‌भुत सृष्टि के लिए अभिव्यंजना की नूतन प्रणाली को भी अपनाया गया है।**

❑❑

Scanned with ACE Scanner